दो शब्द

स्पष्ट ही, लेखक का ध्येय, प्रस्तुत सहायक पुस्तक मे, प्रभाकर, भूषण, बी. ए. आदि के परीक्षार्थियों के लिए, हिन्दी साहित्य के इतिहास का सरल और सुबोध ज्ञान उपस्थित करना ही है। अतएव सरल, प्रश्नोत्तररूप, परीक्षोपयुक्त शैलि का आश्रय लिया गया है। प्रत्येक काल के सामान्य और समुचित परिचय के साथ कालगत विशेषताओ का पृथक् पृथक् निरूपण हुआ है। साथ ही, तत्त काल का विभिन्न राजनैतिक, धार्मिक, सामाजिक आदि दशाओं का भी पृथक् पृथक् स्पष्ट और संक्षिप्त चित्र उपस्थित किया गया है। कवियों मे, विशेष वर्णन, विशेष प्रतिनिधि कवियों का ही किया गया है। अन्यो का संक्षिप्त संकेत मात्र ही है। कारण, अन्य कवि प्रधानतया उन्ही विशेष कवियों की भी विशेषताओ और उन्हीं के आदर्श को लेकर चले हैं। अत., उनका विशेष वर्णन इस छोटी सी पुस्तक मे अपेक्षित नही था। विशेष जिज्ञासु को अन्यत्र देखना चाहिये।

पुस्तक को, यथाशक्य, सरल और विभिन्न कालों की दशाओं, प्रवृत्तियों और भावनाओ का स्पष्ट चित्र लिये सुबोध, परीक्षोपयोगी बनाने का प्रयत्न किया गया है। किन्तु प्रयत्न फल नही हो जाता। वह तो पश्चात् ही होता है, और, इष्ट भी होता है और कभी-कभी अनिष्ट भी होता है। अतः उसका अनुमान तो वे ही करेंगे, जिनके लिए कि यह पुस्तक लिखी गई है।

प्रश्नोत्तर शैलि के कारण, अवश्य ही, कहीं कही पिष्टपेषण सा प्रतीत होगा, पर वह अनिवार्य सा था। तो भी, वह भी, परीक्षार्थियों का सहायक ही होगा, उनके ज्ञान की दृढ़ता के लिए।

पुस्तक के तैयार होने में, ऊपर उक्त परीक्षाओं की पाठ्य पुस्तकों से सहायता लेनी पड़ी है। अतः उनके कर्ताओं का लेखक पर आभार है।

पुस्तक का श्रेय यदि कुछ है, तो वह भाई रामेश्वर प्रसाद पाण्डेय 'अरुण' को ही है, जिन्हे परीक्षार्थियों की सर्वदा अगाध चिन्ता रहती है और जिनकी प्रबल प्रेरणा ही वस्तुतः पुस्तक का कारण भी है।

दोषों से बचना बहुत कठिन है। अवश्य आये होंगे कहीं न कहीं, प्रमाद और शीघ्रतावश। लेखक उनके लिए क्षमा-प्रार्थी है। भविष्य में, अवसर होने पर, परिमार्जन का विश्वास दिलाता है।

विनीत

लेखक

वीरगाथा काल
प्रारंभिक परिचय

प्रश्न— हिन्दी क्या है ? संक्षिप्त परिचय दो।

उत्तर हिन्दी वर्तमान में भारत की सर्व-प्रमुख, सर्वाधिक-व्याप्त और सर्वसम्मत राष्ट्र-भाषा है। इसको थोड़े बहुत उच्चारण-जन्य या अन्य ऐसे ही भेद के साथ भारत की लगभग २० करोड़ की जन-संख्या ५-६ प्रान्तों में बोलती है। पहिले देश भाषा या 'भाखा' के नाम से प्रचलित इस भाषा का हिन्दवी या हिन्दी नाम मुसलमानों ने रक्खा था।

अपभ्रंश के पश्चात् हिन्दी ही वस्तुतः सत्य रूपमें भारत की प्रतिनिधि भाषा रही है, जिसमें उसके (भारत के) समय समय पर परिवर्तित होते हुए दृष्टिकोणों का, मानसिक दशा का स्पष्ट प्रतिबिम्ब वर्तमान है। अपभ्रंश से हिन्दी का साक्षात् अवतार होता है, अतएव परम्परा से भी यही अपभ्रंश की उत्तराधिकारिणी हुई। इस उत्तराधिकार को इसने कहां तक निबाहा है, यह इसके आज तक के साहित्य के अनुशीलन से स्पष्ट ज्ञात होता है। इसका साहित्य किसी भी काल में जनता से पृथक् होकर नहीं चला। गत एक हज़ार वर्षों की भारतीय समाज की परिवर्तमाण दशा का हिन्दी-साहित्य में स्पष्ट और उज्ज्वल चित्र है, जो कि इसके (हिन्दी के) जातीय या राष्ट्रीय होने का अकाट्य प्रमाण है। यही किसी भी प्रतिनिधि राष्ट्र-भाषा की विशेषता भी होती है। इस और इस जैसी अन्य विशेषताओं से ही प्रभावित होकर नवीन विधान-निर्माताओं ने इसे राष्ट्र भाषा (या अन्ततः प्रान्तीय भाषा) का स्थान दिया है।

प्रश्न हिन्दी के साहित्य का संक्षिप्त परिचय दो।

उत्तर हिन्दी का साहित्य सदैव सार्वजनिक रहा है। अतएव भारत के गत एक हज़ार वर्ष के इतिहास में जो कुछ घटा, उसका स्पष्ट चित्र हमें हिन्दी-साहित्य में मिलता है। अभिप्राय यह है कि हिन्दी-साहित्य की

समय समय पर बदलती हुई भारतीय समाज की धार्मिक, राजनैतिक और जातीय प्रवृत्तियों या परिस्थितियों के अनुसार ही हिन्दी-साहित्य के अन्तर में भी परिवर्तन होते रहे।

कोई समय था, जब भारतीय जाति के सामने केवल संघर्ष ही संघर्ष था। उसे तलवार और उसको चलाने वाली भुजा की शक्ति की आवश्यकता थी, जिससे मानवता को कुचलती बढ़ी आती हुई दुर्द्धर्ष विदेशीय शक्ति का प्रतिरोध किया जा सके। आवश्यकता और परिस्थिति के अनुसार हिन्दी-साहित्य ने वीरगीत गाये और चन्द बाल्ह जैसे कवि उत्पन्न किये।

दूसरा समय आया, जबकि विदेशी शक्ति छाती पर जम कर बैठ चुकी थी। निराश जनता को आत्म-त्राण का कोई उपाय नहीं सूझता। आत्म-विश्वास लुप्त हो जाता है। घोर निराशा मे जगत् के प्रति निराशा और विराग की भावना उद्बुद्ध होती है। तो हिन्दी साहित्य में कबीर जैसे सन्त कवि उत्पन्न हुए। समाज की डूबती हुई आत्मा को सहारा मिला, सम्बल मिला। आपत्तियों के सागर में। अनन्तर, और व्यवस्थित रूप में भक्ति का प्रवाह बहा, जिसमें डूबकर भारतीय समाज कठोर वर्तमान को भूल गया। इस समय हिन्दी-साहित्य में तुलसी, सूर जैसे रत्न उत्पन्न हुए, जिन्होंने विपन्न भारतीय आत्मा को सबल किया, उसे जीवन-शक्ति प्रदान की।

साथ ही इस चित्र का दूसरा पहलू भी है। जो लोग विदेशी छत्र-छाया स्वीकार कर चुके थे—अनेक राजे रजवाड़े, छोटे २ राज्य—और आनन्द और ऐश में अपना जीवन बिता रहे थे, उनकी मनोदशा का प्रतिबिम्ब भी हिन्दी-साहित्य में आये बिना नहीं रहा। दरबारी संरक्षण में उत्कट शृंगार साहित्य भी बना।

अंग्रेज़ों के समय में, स्वतन्त्रता के लिए जो चैतन्य समाज में उपस्थित हुआ, उसके सर्वतोमुखी प्रवाह में हिन्दी-साहित्य भी बहा। साहित्य के आधुनिक युग में रवीन्द्र के मुक्तिगान और गांधी जी के चर्खे की ध्वनि स्पष्ट गुंजित है।

हिन्दी साहित्य की आयु लगभग एक सहस्र वर्ष आंकी गई है। अब तक यह पूर्ण सर्वाङ्गीण हो चुका है। इसमें काव्य, विज्ञान, धर्म, व्यापार, भ्रमण, अर्थ, राजनीति, आदि प्रायः सब विषयों के उत्कृष्ट ग्रन्थ बन चुके हैं। इसका कोई अंग अधूरा नहीं है २० वीं सदी से पहिले उसके जो अङ्ग विकल थे— वे सब अब आधुनिक युग में परिपुष्ट हो चुके हैं। इस समय हिन्दी साहित्य किसी भी बड़े साहित्य की समानता कर सकता है।

प्रश्न—हिन्दी साहित्य के इतिहास-लेखन का क्या क्रम रहा ?

उत्तर—हिन्दी मे पहिले साहित्य का इतिहास लिखने की प्रणाली एक सूची के ढंग की थी। लेखक का जन्म समय-संवत्, थोड़ा बहुत वंश-परिचय और उसके ग्रंथों का नाम और विषय मात्र देना पर्याप्त समझा जाता था। उदाहरणार्थ शिवसिंह सरोज को ले लीजिये। इतिहास-लेखन का वास्तविक, ऐतिहासिक ढंग वस्तुतः २० वीं सदी में ही प्रारम्भ होता है, जबकि अंग्रेज़ी साहित्य का परिचय प्राप्त कर हिन्दी के साहित्यिकों को भी अपने साहित्य का ऐसा ही वैज्ञानिक ढंग का इतिहास लिखने की प्रेरणा होती है। इस दिशा में सर्व-प्रथम प्रयास करने वालों में द्विवेदी जी, मिश्र-बन्धु, आचार्यशुक्ल, बाबू श्यामसुन्दर दास जी आदि के नाम चिरस्मरणीय रहेंगे। इन लोगों ने अथक परिश्रम द्वारा, अनेक विभिन्न भाषाओं के ग्रंथों से, इतिहासों, ताम्रपत्रों, शिला-लेखों आदि से खोज खोजकर तथ्यों का संग्रह किया। फिर उनका परस्पर सामञ्जस्य, आलोचन-प्रत्यालोचन कर, विशेष २ प्रवृत्तियों के आधार पर काल विभाग किया और समस्त साहित्य का वैज्ञानिक परस्पर कार्य कारण भाव के) ढंग में असम्बद्ध ब्यौरा दिया, जिसका आधार लेकर आज छोटा बड़ा प्रत्येक लेखक इतिहासकार बनना चाहता है। पर वस्तुतः इतिहास-लेखन इतना सरल नहीं जितना समझा जाता है। वह विशेष अध्ययन, मनन और विवेचन द्वारा ही साध्य कार्य है। लेखक भाषा का, काव्य सरणि का, काव्य, इतिहास, धर्म, दर्शन आदि शास्त्रों का पण्डित होना चाहिये। उसकी विवेक शक्ति अत्यन्त तीव्र और बौद्धिक सामर्थ्य पूरी होनी चाहिये, तभी वह उपस्थित तथ्यों का विश्लेषण, विवेचन और एकीकरण कर सकेगा।

प्रश्न हिन्दी साहित्य का काल-विभाग किस आधार पर और कितने भागों में किया गया है ?

उत्तर हिन्दी साहित्य के काल का विभाग उन विशेष प्रमुख प्रवृत्तियों के आधार पर किया गया है, जो समय-विशेष के साहित्य में उस काल की अधिकांश रचनाओं मे समान रूप से उपलब्ध होती हैं। अर्थात् यदि किसी समय की अधिकांश प्रकृष्ट रचनाओं में वीरता की भावनाएं अधिक प्राप्त होती हैं तो चाहे उस काल में १०० मे २५ प्रतिशत अन्य प्रकार का भी साहित्य उपलब्ध होता हो तो भी हम उसे वीरकाल ही कहेंगे। क्योंकि उसमें अधिकांश रचनाएं वीर रस की हैं।

इस आधार पर हिन्दी साहित्य को तीन भागों में विभक्त किया गया है, १ आदि-युग (वीर गाथा काल) १०५० से १४०० तक, २ मध्य काल (भक्ति काल और रीतिकाल) १४०० से १६०० तक, ३, आधुनिककाल (गद्यकाल) १६०० से आज तक। इस प्रकार हिन्दी साहित्य के इतिहास का सुविधापूर्वक, सर्वाङ्गीण और क्रमिक ज्ञान प्राप्त करने के लिए उसे विशेष २ प्रवृत्तियों के आधार पर उपर्युक्त तीन भागो मे बांट लिया गया है। कोई कोई आचार्य इस एक हजार या नौ सौ वर्ष के काल को वीर-गाथा, भक्ति,रीति और गद्यकाल के नाम से पृथक् २ चार भागो में विभक्त करते है। अन्तर कुछ नहीं।

वीरगाथा काल

प्रश्न—वीर गाथाकाल के भारतीय समाज की धार्मिक, ऐतिहासिक और राजनैतिक परिस्थितियों पर संक्षिप्त प्रकाश डालिये।

उत्तर- हर्ष वर्द्धन की मृत्यूपरान्त भारतीय समस्त शासन-सूत्र आपसी राग द्वेष के कारण छिन्न-भिन्न होकर छोटे छोटे भागों मे बंट गया था। बाह्य आक्रमण का संगठित प्रतिरोध करने की शक्ति नही रही थी। धार्मिक दशा अस्तव्यस्त थी। बौद्ध धर्म ब्राह्मण या वैदिक धर्म को उखाड कर खूब उन्नत हो चुका था और अब सिद्धों द्वारा अश्लील आडम्बरो में जकडा जाकर, विकृत होकर, स्वयं भी भारत से नष्ट होता जा रहा था। ब्राह्मण धर्म फिर जोर पकड़ने लगा था। अधिकांश समाज की दशा भी उखड़ी

पुचड़ी थी। उसमे स्थायिता नहीं रही थी। अनेक प्रकार के रिवाजों कुरीतियों और अन्ध परम्पराओं ने उसे खोखला बना दिया था। अनेक मत-मतान्तर प्रचलित होगये थे, गृहस्थी तरह तरह की यौगिक सिद्धियों के लिए पागल हो गये थे। इससे सर्वदा परस्पर के संघर्ष की स्थिति रहती थी। देश का शासन छिन्न-भिन्न था। चोरी, डकैती, अकाल, बाढ़, छोटे छोटे राजाओं के बिना बात के परस्पर के युद्ध और उनमे उत्पन्न बर्बादी, ये ही उस समय की विशेषताएं थीं। ऐसी ही गड़बड की दशा मे, लग भग ७ वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में सब से पहिले भारत पर मुसलमानों का सिंध में हमला हुआ। वहां आकर कालान्तर मे वे लोग स्थानीय बौद्ध और ब्राह्मण राजाओं की फूट मे गुलाम बना कर जम गये और अपने राज्य-विस्तार की चिन्ता करने लगे। फलतः उनके अपने पास के प्रान्त राजपूताना पर हमले होने लगे। छोटे २ राजा गण शक्ति भर उनसे लड़ लड़ कर नष्ट होते रहे। जहां तक वीरता और निर्भयता का सवाल था वे लोग मुसलमानों से कहीं बढ़े चढ़े थे। किन्तु उनमें सामूहिक शक्ति का अभाव था। सो, वे मुस्लिम शक्ति के विस्तार को रोक नहीं सके। मुसलमान आहिस्ता २ फैलने लगे। उधर सिन्ध के अतिरिक्त पंजाब से भी मुसलमान हमलावर घुसने लगे थे। अभिप्राय यह है कि इतिहास के ये ४-५ सौ साल समस्त पश्चिमी उत्तरी भारत में बहुत ही उथल पुथल युद्ध मार काट और अशान्ति के थे। इन के मध्यमे सम्राट पृथ्वी राज हम्मीरके पश्चात इस देशके अधिकांश भूभाग मे मुसलमानो का राज्य स्थापित हो जाता है। मुसलमानो के अब तक के हमले केवल लूटमार के लिए होते थे, पर अब बाबर ने आकर भारत को अपना मुल्क मान कर यहां अपने राज्य की नींव डालनी चाही और तदनुसार उदार और कूट नीति से चला। वह सफल भी हुआ और लगभग १४ वीं सदी में मुगलों का राज्य यहा प्रतिष्ठितसा होगया था। लोगों को सांस लेनेके लिए कुछ समय शान्ति का मिला। बस यहीं वीरगाथा काल समाप्त होकर भक्तिकाल प्रारम्भ हो जाता है।

प्रश्न—वीरगाथा काल की भाषाओं का सक्षिप्त वर्णन करके हिन्दी के उदय काल पर प्रकाश डालिये और बताइये हिन्दी मे कौनसा और किस

समय का सर्व-प्रथम ग्रन्थ उपलब्ध होता है।

उत्तर—इस काल में दो भाषाएं उपलब्ध होती है, एक अपना स्थान छोड़ती हुई अपभ्रंश या प्राकृताभास और दूसरी सार्वजनिक भाषा के रूप में उदीयमान होकर अपभ्रंश का स्थान लेती हुई देशभाषा या हिन्दी। प्राकृत के बाद अपभ्रंश का राज्य रहा, बोलचाल में भी और साहित्य में भी। किन्तु अब आकर वह केवल साहित्य की ढलती उखड़ती हुई भाषा रह गई थी। बोलचाल के लिए आम लोग देश भाषा का ही आश्रय लेते थे। लेकिन धर्म, नीति, शृंगार और अन्य व्याकरण ग्रन्थ आदि साहित्यिक प्रणयन अब भी अपभ्रंश में ही होते थे। अक्सर विद्वान् और पण्डित लोग देश भाषा में लिखना हीन समझते थे। देशभाषा में ग्रन्थ-प्रणयन (रचना) प्रारम्भ हो जाने के पश्चात् भी अनेक विद्वान् कवि लोग अपभ्रंश को ही विशेषता देते थे।

देश भाषा मे लिखने वाले लोग भी अपने पाण्डित्य-प्रदर्शन के लिए कोई अधिक कोई कम उसमें अपभ्रंशकी पुट दे देतेथे। यह प्रणाली वीरगाथा-काल के अन्त तक भी बराबर बनी रही, हाला कि अब तक देश-भाषा भी साहित्यिक उपयोग के योग्य हो चुकी थी और उस में कई अच्छे अच्छे रासो काव्य और शृंगार भक्ति योग पर ग्रन्थ लिखे जा चुके थे। देशभाषा मे यद्यपि चन्द से पहिले ही छोटी मोटी मुक्तक रचनाएं, धर्म नीति और शृंगार के विषय की लिखी जाने लगी थीं, पर रूप की स्थिरता हमे देश भाषा में चन्द के काल में ही मिलती है। वहीं से उसका रूप स्थिर और व्यवस्थित हुआ प्रतीत होता है। आगे चल कर, राजपूतो का काल होने के कारण देश-भाषा में राजस्थानी के शब्दों की प्रधानता स्वाभाविक ही थी। कवि, चारण लोग अपने अपने आश्रयदाता राजाओ की स्तुति और वीरता के गान जब गाते थे तो उनकी भाषा में राजस्थानी शब्दो और रूप का अधिक रहना स्वाभाविक ही था। मुसलमानों के साथ के संघर्ष के साथ ही साथ देश-भाषा का भी विस्तार हो रहा था। पर क्योंकि इस समय के कवि का प्रधानतया वर्ण्य रस वीर था इस लिए भाषा मे भी ओजोगुण की मात्रा बढ़ती रही।

इस काल-प्रतियोगिता में अपभ्रंश स्वभावतः रह गई और हिन्दी या देश-भाषा का उत्तरोत्तर विकास होता रहा। इस काल का सर्वप्रथम ग्रन्थ खुमाण रासो प्राप्त होता है। " ...

प्रश्न गाथा और दूहा के क्या अर्थ है ?

उत्तर गाथा शब्द से प्राकृत के छन्द का बोध होता है और दूहा से अपभ्रंश के छन्द का। ये दोनों शब्द अपने अपने अर्थों में रूढ़ हो गये हैं। प्राकृत काल में जैसे गाथा कहने से प्राकृत छन्द का ज्ञान होता था, वैसे ही अपभ्रंश काल मे दूहा कहने से अपभ्रंश के पद्य का ज्ञान होता था। वर्तमान हिन्दी के दोहे का इसी दूहे से विकास है।

प्रश्न अपभ्रंश का परिचय देते हुए वीरगाथा काल मे हुए अपभ्रंश भाषा के मुख्य २ लेखकों और उनकी कृतियों का संक्षिप्त विवरण दो।

उत्तर—एक समय था जब कि देश के अधिकांश भाग के जन-साधारण की बोलचाल की भाषा प्राकृत थी, किन्तु साहित्य-लेखन प्राय. संस्कृत में होता था। समय बदला, संस्कृत जन-साधारण से और अधिक दूर हटती गई और उसका स्थान प्राकृत ने ले लिया। अब साहित्य-लेखन भी मुख्यतया प्राकृत में होने लगा। अर्थात् बोलचाल और साहित्य दोनो मे प्राकृत ही चलने लगी। किन्तु एक ही शब्द को कोई ग्रामीण अशिक्षित भी बोले और कोई शिक्षित विशिष्ट भी बोले तो दोनो के उच्चारण में अवश्य ही अन्तर आयेगा। कारण, एक अनभ्यस्त ग्रामीण साधारण जन के लिए किसी शब्द की सूक्ष्म ध्वनियां उच्चारण करने में अवश्य कठिनाई आवेगी, वह उसका शुद्ध उच्चारण नही कर पायेगा। फलतः दोनो के उच्चारण और पश्चात् स्वरूप में भी भेद पड़ता जायगा। भाषाओं के विकास में यही सिद्धान्त काम करता है। प्राकृत भी साहित्यिकों द्वारा प्रयुक्त रूप में और साधारण जन की बोलचाल के रूप में दो प्रकार की होगई। साहित्यिक शुद्ध, परिमार्जित और सौन्दर्य-सम्पन्न थी किन्तु लोक-प्राकृत उसके बोलने वालों (सर्व साधारण) के समान ही सीधी, सादी, जिसको कठोर और विशेष सूक्ष्म ध्वनियों को आवाज वृद्ध सर्व साधारण की सुविधा के अनुकूल कोमल और सुख से उच्चारण करने योग्य बना लिया गया है, थी। इसको

प्राकृताभास (प्राकृत जैसी प्रतीत होती हुई) या अपभ्रंश (क्योंकि इसमें आने पर प्राकृत के शब्द प्राकृत के नियमों और स्वरूप से भ्रष्ट (च्युत हो जाते है ।) नाम दिया गया । समय आने पर बोलचाल की यह भाषा (प्राकृताभास) इतनी प्रसिद्ध हुई कि साहित्य मे भी इसने प्राकृत को उखाड कर उसका स्थान ले लिया । क्योंकि प्राकृत अब जन-साधारण से बहुत दूर जा चुकी थी । बहुत काल तक फिर अपभ्रंश या प्राकृताभास का ही राज्य रहा । बोलचाल और साहित्य दोनो में इसी का प्रयोग होता रहा । किन्तु उपर्युक्त भाषा विकास के अनुसार एक ओर अपभ्रंश का साहित्यिक रूप कुशल साहित्यिकों के हाथो में पडकर उत्तरोत्तर मंज कर प्रकृष्ट होकर साधारण जनता के लिए दुरूह होता गया, और उधर दूसरा बोलचाल का रूप भी जनता की सुविधा, परिस्थिति और आवश्यकता के अनुसार अपने भिन्न किन्तु स्वाभाविक मार्ग मे विकसित होता गया । अन्ततोगत्वा दोनों रूप सर्वथा भिन्न हो गये । अपभ्रंश के इस बोलचाल के रूप को देश भाषा या हिन्दी का पूर्वरूप माना गया है । यही देश भाषा वीरगाथा काल की मुख्य भाषा बनी, जिसमें चन्द ने लिखा और अन्य रासो लिखे गये । किन्तु रासो ग्रन्थ देश-भाषा मे लिखे जाने पर भी अपभ्रंश का साहित्यिक आदर अब भी, वीरगाथा काल में भी बना हुआ था । विशिष्ट शिक्षित विद्वान् पण्डित लोग धर्म, नीति, व्याकरण योग, काव्य आदि के लिए अपभ्रंश को ही अपनाते थे । स्वयं देश-भाषा मे भी, भाषा सौंदर्य की दृष्टि से और अपने पाण्डित्य-प्रदर्शन के लिए अपभ्रंश शब्दो का प्रचुर प्रयोग होता था । किन्तु फिर भी समय के प्रवाह का विरोध सम्भव नहीं था । अपभ्रंश का स्थान धीरे २ देश भाषाएं लेती जा रही थीं । फिर भी अपभ्रंश की धारा अविच्छिन्न गति से वीरगाथा काल के अन्त तक बहती रहीं । इस भाषा से अन्तिम प्रकृष्ट रचनाएं विद्यापति की कीर्तिलता और कीर्तिपताका मानी जाती हैं । अपभ्रंश मे सब से प्राचीन सरहपा (८१७) के दूहे या दोहे माने जाते हैं । इनके पश्चात् अनेक ऐसे धर्माचार्य, नीतिकार, कवि, वैयाकरणी, योगाचार्य हुए, जिन्होने दोहो के रूप मे भिन्न २ विषयो की फुटकल और ग्रन्थ-रूप मे रचना की । उनमें से

कुछ एक मुख्य मुख्य लेखक निम्नलिखित हैं।—

१ कविराज स्वयम्भुदेव इन्होंने रामायण, महाभारत की कथा संक्षेप में लिखी। इनका काल सम्वत् ८९७ स्वीकृत है।

२ देवसेन इन्होंने श्रावकाचार नामक जैन धर्म ग्रन्थ लिखा, जिसकी अपभ्रंश हिन्दी या देश-भाषा के अधिक निकट है। इनका समय ६६० है।

३ हेमचन्द्र इन्होंने सिद्ध हेमचन्द्र शब्दानुशासन (प्राकृत का व्याकरण ग्रन्थ) लिखा, जिसमें बीच बीच में प्राकृताभास या अपभ्रंश के पद्य आते हैं।

इनके अतिरिक्त अन्य, सोमप्रभ सूरि (सं० १२४१), जैनाचार्य मेरुतुंग (सं० १३६१। शार्ङ्गधर (सं० १५००) आदि लेखक हुए, जिन्होंने अपनी प्राकृत की रचनाओं में बीच २ मे प्राकृताभास या अपभ्रंश के पद्य भी रखे किन्तु इस भाषा मे इस समय मे की हुई प्रचुर परिमाण में काव्य-रचना हमें विद्यापति की ही मिलती है।

४ विद्यापति इन्होंने तिरहुत के राजा शिवसिंह की प्रशंसा मे पूर्वी अपभ्रंश में दो पुस्तके कीर्तिलता और कीर्तिपताका लिखीं, जिनकी भाषा मैथिली अपभ्रंश है। छन्दों में कवित्त दोहा पदों का उपयोग इन्होंने भी किया है।

इनके अतिरिक्त शरहपा आदि बौद्ध योगी भी हुए, जिन्होंने इस भाषा में अपना प्रचार किया। कहना नहीं होगा प्राकृत के समान अपभ्रंश के भी देश-काल-कृत कई रूप प्रचलित हुए थे। अत एव भिन्न २ प्रदेशों के लेखकों के ग्रन्थों में भिन्न भिन्न अपभ्रंश के नमूने मिलते हैं।

प्रश्न देश-भाषा का स्वरूप बताते हुए उसके डिंगल पिंगल रूपों की व्याख्या कीजिये।

उत्तर देश-भाषा या हिन्दी का आदि रूप ऐसी भाषा थी जो बोल-चाल के रूप मे अपभ्रंश के समय चालू हो चुकी थी और जिसने अन्ततो-गत्वा अपभ्रंश का साहित्य में भी स्थान ग्रहण किया। यह अपभ्रंश या प्राकृताभास की प्रत्यक्ष सन्तान थी—उसी से इसका विकास हुआ था। इस भाषा की सर्वप्रथम रचना १०५० की राजा भोज के चचा मुंज की मिलती

है। किन्तु अनुमान यह है कि इस देशभाषा का चलन उससे पहिले हो चुका होगा। क्योंकि किसी भी भाषा मे कविता तब होती है जब उसका थोड़ा बहुत विकास हो चुकता है। इसके बाद के लगभग डेढ़ सौ वर्षो की हमें कोई वृहद् रचना इस भाषा में नहीं मिलती। अपभ्रंश के अनुकरण पर इसमें भी लिखे हुए धर्म, नीति, शृंगार, आदि के दोहे और पद्य अवश्य मिलते हैं। इस समय में इसका रूप अस्थिर रहा होगा और वह प्राकृत और अपभ्रंश की तरह ही देश-विशेषों में भिन्न २ होगा। इस समय की कोई असंदिग्ध साहित्यिक सामग्री नही मिलती। इसके पश्चात् १२ वी सदी के प्रथम चरण में लिखे हुए कुछ एक रासोग्रन्थ मिलते हैं, जिनमे पृथ्वीराजरासो की भाषा काव्य के विशेष उपयुक्त और परिमार्जित है। ऐसा प्रतीत होता है कि चन्द के समय तक देश-भाषा का रूप काफी स्थिर हो चुका था, उसमें कुछ नियम आदि भी बन गये थे और अब वह साहित्यिक भाषा समझी जाने लगी थी। किन्तु उसके इस रूप के साथ ही, उसका एक दूसरा बोलचाल का सर्व साधारण रूप भी धीरे २ विकसित हो रहा था, जिसमे राजस्थानी शब्दों की अधिकता होती थी, और जो भाषा व्याकरण आदि के नियमों में प्रायः प्रथम से स्वतंत्र थी। देश भाषा के इन्हीं दो रूपो के नाम उस समय क्रमशः पिंगल और डिंगल प्रसिद्ध थे। अर्थात् साहित्य का परिमार्जित नियमबद्ध भाषा पिंगल कहलाती थी, जिस में पृथ्वीरासो लिखा गया और इसका दूसरा साधारण बोलचाल का असंयत रूप डिंगल कहलाता था, जिसमें भाटों चारणों द्वारा अपने अपने आश्रयदाता राजाओ की प्रशंसा में वीर गीत लिखे जाते थे, जो सर्वसाधारण के गाने के उपयुक्त थे। कहना नही होगा इस बोलचाल के भी देश भेद से अनेक भेद थे। पूर्व का और, पच्छिम का और, मध्य का और। पूर्वी के लिए विद्यापति पच्छिमी के लिए खुसरो और मध्य के लिए वीसल देवरासो के उदाहरण ले सकते हैं।

प्रश्न वीरगाथा काल के साहित्य पर एक विवरण लिखिये।

उत्तर देश की परिस्थिति के अनुकूल साहित्य में भी हमे वही तलवारों की झंकार सुनाई देती है। कहते हैं, उस समय के कवियों को एक हाथ में

तलवार और दूसरे में कलम पकड़नी पड़ती थी। यह समय ही मुसलमानों के साथ अविरत संघर्ष का था। मुसलमानी आक्रमण बड़ी तेज़ी से हो रहे थे और व्यक्तिगत अकेले अकेले राजपूत वीर उनसे लोहा ले रहे थे। सामूहिक प्रतिरोध शक्ति का अभाव होने पर भी वीरता में एक एक से बढ़कर था। भाट चारण लोग अपने २ आश्रयदाता राजा की कविता में स्तुति करते नहीं थकते थे। क्योंकि संघर्ष केवल मुसलमानों से ही नहीं था, प्रत्युत उन सब में आपस में भी इतना संघर्ष था कि प्रत्येक स्तुति-लेखक कवि भाट या चारण अपने राजा को सबसे बढ़ा चढ़ा दिखाने की चेष्टा करता था। उसके लिए बड़ी २ अत्युक्ति कहने मे भी उन्हे संकोच नहीं होता था। अधिकतर ऐसे युद्ध स्त्रियों के लिए होते थे। स्वयंवरो मे से लड़की भगा ले जाना और फिर युद्ध होना साधारण आये दिन की बात थी। कभी कभी किसी से इसीलए युद्ध होता था कि उपने अपनी लड़की या बहन देना स्वीकार नहीं किया था। साथ ही व्यक्तिगत झगड़े और जातिगत युद्धों का भी ठिकाना नहीं था। अतएव उस समय की रचनाओं म वीर और शृंगार जैसे विरोधी रसों का साथ २ वर्णन है। उनका उद्देश्य अपने आश्रयदायी के रण-चातुर्य और तप तेज़ के दिखाने का होता था। उसके लिए वे किसी स्त्री कारण को ढूंढ़ते थे। यदि कोई वस्तुतः ऐसा कारण उन्हे नहीं मिलता था तो वे उसकी कल्पना कर जोड़ते थे और कोई कल्पित स्वयंवर दिखा कर युद्ध का वर्णन करने लगते थे। इसी परिपाटी का उस समय के प्रायः समस्त ही काव्यों में आश्रय लिया गया है। कोई राजा जबर्दस्ती किसी क्षत्रिय की कन्या यदि वर के नहीं लाया तो वह वीर नहीं माना जाता था। अतएव कवि लोग कहीं न कहीं से लड़की का सम्बन्ध युद्ध के साथ अवश्य जोड़ ही देते थे। ऐसी रचनाएं तो उस समय की बहुत कम हैं जो वस्तुत सच्ची देश भक्ति से प्रेरित होकर किसी राष्ट्रीय वीर की स्तुति मे लिखी गई हों। ऐसा भी नहीं मिलता कि उस समय के सभी कवियों ने अपनी देश-प्रेरणा से सब क्षत्रियों को चेतन कर शत्रु का सामूहिक प्रतिरोध करने को आह्वान किया हो। वे लोग तो अपने अपने राजाओं की झूठी सच्ची प्रशंसा कर अपना स्वार्थ पूरा करते थे। अतएव

उनके आधार पर कोई ऐतिहासिक विवरण नहीं प्राप्त हो सकता। क्योंकि उस समय के अधिकांश रचनावृत्त मनघडन्त और कोरी कल्पना से प्रसूत हैं, उनमें ऐतिहासिक तथ्य ढूंढ़ना बहुत कठिन काम है।

यह साहित्य दो रूपों मे मिलता है एक प्रबन्ध रूप में जैसे पृथ्वीराज रासो इसी आधार पर इस काल का नाम रखा गया है और दूसरा, वीर गीत के रूप में, जैसे, वीसलदेव रासो। इनके अतिरिक्त कुछ फुटकल धर्म, नीति, श्रृंगार, सूक्तियों, मुकरियों आदि के रूप मे भी उपलब्ध होता है, जिसका यथा स्थान वर्णन आयगा।

प्रश्न वीरगाथा काल मे लिखे गये देश-भाषा के मुख्य २ काव्यो और उनके कवियों का संक्षेप मे पृथक् पृथक् वर्णन करो।

उत्तर- देश भाषा में 'इस समय दो प्रकार के काव्य लिखे गये एक प्रबन्ध रूप खुमाण रासो जैसे और दूसरे मुक्तक वीरगीत रूप जैसे वीसलदेव रासो। इन सब ही काव्यों का विषय प्राय एक जैसा ही है। अपने आश्रय-दायी राजा लोगों के शौर्य, पराक्रम, उनके अनेक विवाह और उनके लिये लडे गए युद्धो का वर्णन है। हां, भारतीय इतिहास के विशिष्ट राजपूत राजाओं के वर्णन में अवश्य देश-भक्ति का प्रवाह है। पर, इस काल की अन्य सर्वसाधारण रचनाओ मे ये ही ऊपर कही प्रवृत्तियां पाई जाती हैं,जिससे इन काव्यो का वास्तविक इतिहास से कोई सम्बन्ध नहीं प्रतीत होता। अधिकतर घटनाएं कल्पित घडी हुई होती हैं जो कवियों की खुशामद मात्र लगती हैं। ये प्रवृत्तियां न्यून अधिक मात्रा में इस समय के सभी काव्यकारों में प्राप्त होती हैं, ऐसा समझ लेना चाहिये।

इस समय की जो विशेष रचनाएं अभी तक मिली हैं उनका संक्षिप्त परिचय निम्न प्रकार से है.-

खुमान रासो, दलपति विजय सब से प्राचीन रचना इस समय की यह उपलब्ध होती है। किन्तु यह पूरी नही मिलती। जो प्रति प्राप्त होती है, उसमे, चित्तौड के राजवंश के वर्णन मे, महाराणा प्रताप सिंह तक का वर्णन है, आगे का नही। और उसमें भी, भाषा-विज्ञानियो का

उसके विषय में मत है, अधिकांश प्रक्षिप्त, बाद में मिलाया हुआ है। यह उसकी भाषा की भिन्नता देखने पर सिद्ध हो जाता है। आचार्य शुक्ल जी को खोज करते हुए इस काव्य का कुछ अंश मिला था, जो मूल ग्रंथ का भाग कहा जाता है। इसमें चित्तौड के खुम्माण द्वितीय के युद्धों का वर्णन है, जिनमें अनेक युद्ध उन्होंने मुसलमानों से लड़े थे, जिनका समय ८७० ९६० है। अतएव प्रबन्ध रूप में यह सर्व प्रथम रचना मिलती है। उसी को १७ वीं शताब्दी में तत्कालीन चित्तौड के महाराणा की आज्ञा से पूर्ण कराया गया, ऐसा अनुमान किया जाता है। इसकी भाषा देश-भाषा का, प्रारम्भिक, अपभ्रंश के अधिक निकट का, राजस्थानी शब्दों की अधिकता लिए अव्यवस्थित, ढिलमिल रूप है।

वीसलदेव रासो, नरपति नाल्ह नरपति नाल्ह अजमेर के राजा विग्रहराज चतुर्थ (वीसल देव) का समकालीन कवि था। वीसल देव इतिहास-प्रसिद्ध वीर है, जिसने तुर्कों का उस समय डट कर मुकाबला किया था और उन्हें भगाया था। इन्होंने और भी अनेक सफल युद्ध विदेशी आक्रान्ताओं से किये। इनका राज्य-विस्तार हिमालय से विंध्याचल तक था। १२२० का इनका एक शिलालेख है जिसमे लिखा है, इन्होंने आर्य देश से मुसलमानों को भगा कर इसे फिर आर्य देश बनाया था।

नरपति नाल्ह ने इस प्रसिद्ध वीर के प्रेम का चित्र इस छोटे से गीत-काव्य में उतारा है। इसके सब छन्द परस्पर स्वतंत्रमुक्तकहैं। इसके ४ खण्डों में पहिले में २५ छन्दों में वीसल देव के जैसलमेर के राजा भोज की लडकी राजमती के साथ ब्याह का वर्णन है, दूसरे में, ८६ छन्दों में उससे रूठ कर वीसल देव के विदेश (उडीसा) चले जाने का और वहां एक वर्ष रहने का वर्णन है; तीसरे मे १०२ छन्दों मे राजमती के विरह का वर्णन है और चौथे मे भोज अपनी पुत्री को घर ले जाता है और फिर आकर वीसलदेव उसे वापिस लाता है।

इसकी भाषा पिंगल (काव्य भाषा) के नियमों से स्वतंत्र राजस्थानी शब्दों की प्रधानता लिये डिंगल है। इसको अपभ्रंश और पुरानी हिन्दी की

अवस्था भी कह सकते हैं। क्योंकि उसमें दोनों के गुण मिलते हैं। अर्थात् वह संयोग और वियोग दोनों दशाओं मे है— विभक्तियां शब्दों से पृथक् भी आई हैं और संस्कृत प्राकृत अपभ्रंश के ढङ्ग पर शब्दों में मिली हुई भी। घटना-सामग्री अधिकतर कल्पित है, जिसका इतिहास में कहीं उल्लेख नहीं। पुस्तक में एक एक छन्द कई कई बार भिन्न भिन्न खण्डों में आता है। शृङ्गार वर्णन में कहीं कहीं लेखक को बहुत सफलता मिली है, विशेषतः रानी के-विरह वर्णन में। शैली अव्यवस्थित, प्रारम्भिक दशा मे है। ग्रन्थ का भाषा के इतिहास की दृष्टि से जितना मूल्य है, उतना साहित्यिक दृष्टि से नहीं।

उदाहरण दीठउ आनन सागर समंद तणी बहीर
हंस गवणी मृग लोचणी नारि॥

इनका काल १२१२, पृथ्वीराज का समकाल है।

३ आल्हखण्ड, जगनिक यह भी इसी ढंग का एक वीर गीत-रूप काव्य ग्रन्थ है, जिसमें महोबे के चंदेल राजा परमाल के दरबार में वर्तमान जगनिक कवि ने उसके दो परम वीर सामन्त आल्हा और ऊदल के वीरत्व और प्रेम के चरित्र का बडा ओजस्वी और डिंगल (ग्राम बोलचाल की) भाषा में वर्णन किया है। राजा परमाल पृथ्वीराज का समकालीन और कन्नौज राज जयचन्द के प्रधान सामन्त मित्रों में से था। आल्हा और ऊदल दो भाई उसके परम प्रधान सामन्तों में थे जिनकी वीरता का लोहा जयचंद तक मानता था। उन्होंने बड़े बडे संग्राम जीते थे, अनेक सुन्दरी कन्याएं ब्याही और अन्त में पृथ्वीराज के साथ जयचन्द की लड़की के कारण हुए युद्ध में उनमें से ऊदल मारा जाता है और आल्हा हारने के बाद ऊदल के पुत्र ईदल को लेकर योग साधना के लिए चल देता है। जगनिक ने उनके इन समस्त वीर-प्रेम-कृत्यों का वर्णन उपयुक्त भाषा में किया है, जो इतना आकर्षक है कि आजकल भी मण्डलियां बना बनाकर सुना जाता है। प्रसंगवश इसमे अन्य व्यक्तियों के चरित्र भी आये हैं, पर प्रधानता इन्हीं दो वीर सामन्तों की कथा की है, जिसका अधिक अंश कल्पित, स्तुति रूप है और जिसका इतिहास

में उल्लेख नहीं। इसके नाम से अनुमान किया जाता है कि यह किसी वृहद् संग्रह ग्रन्थ का खण्ड है जो अप्राप्य है—किन्तु इसके विषय में अभी कोई निश्चित मत नहीं सिद्ध हुआ। वस्तुत. यह पुस्तक भाटों और चारणों की वस्तु रहती हुई समय समय पर बदलती रही। इसके वर्णनो में जोड तोड होती रही। भाषा भी अपने मौलिक रूप में नहीं रह पाई। और अब यह रचना जिस रूप में मिलती है उसकी भाषा पृथ्वीराज के समय की भाषा न होकर बहुत आधुनिक है, जिसके समझने में प्राय. कोई खास दिक्कत नहीं होती सर्वसाधारण को। सो, भाषा विज्ञान की दृष्टि से इसका कोई महत्व नहीं और नाहीं ऐतिहासिक दृष्टि से है। आल्हा ऊदल ऐतिहासिक व्यक्ति होते हुए भी उनके जिस चरित्र का इसमें वर्णन किया गया है वह अधिकतम कल्पित है, ऐतिहासिक तथ्यों से मेल नहीं खाता। एक उदाहरण देखिये

दगी सलामी दोनों दल में घुंअना रह्यो सरग मंडराय।
तोपें छुटीं दोनों दल में, रण में होन लगा घमसान॥

इस ग्रन्थ का काल सं० १२३० माना जाता है।

पृथ्वीराज रासो, चन्दवरदायी लगभग एक लाख पद्यों, ६९ समयों और शतशः अध्यायों में शृंगार और वीररस का अद्भुत और वृहद् यह ग्रन्थ इस काल की सर्व प्रमुख रचना है। इसके कर्त्ता चन्दवरदायी को महा कवि की उपाधि दी गई है। चन्द की जन्मभूमि लाहौर थी और वे महाराज पृथ्वीराज के सखा, सामन्त और राजकवि थे, जो हर समय और हर यात्रा में प्रायः उनके साथ ही रहते थे। ये कई भाषाओं-संस्कृत, प्राकृत अपभ्रंश फारसी आदि के ज्ञाता और काव्य शास्त्र, व्याकरण, ज्योतिष आदि शास्त्रों के प्रकांड पण्डित थे। साथ ही ये यंत्र मंत्र विद्या भी जानते थे। इन्हें जालन्धरी देवी का भी इष्ट था, बताया जाता हैं। ये और पृथ्वीराज एक ही दिन उत्पन्न हुए थे, जीवन भर साथ रहे और अन्त में एक ही समय एक दूसरे के हाथों मरे भी।

रासो में चन्द ने यज्ञ कुण्ड से क्षत्रियों के चार कुलों की उत्पत्ति से लेकर, चौहानों के राज्य स्थापन और पृथ्वीराज के जन्म मरण तक का

वृत्तान्त दिया है। रासो के अनुसार, दिल्ली के राजा अनंगपाल के सुन्दरी और कमला नाम की दो लड़कियां थीं, जिनमे से सुन्दरी का ब्याह कन्नौज के राठौर राजा से हुआ जिससे जयचन्द ने जन्म लिया और दूसरी कमला का अजमेर के चौहान राजा सोमेश्वर के साथ विवाह हुआ, जिससे पृथ्वीराज उत्पन्न हुआ। निष्पुत्र अनंगपाल ने वृद्धावस्था मे पृथ्वीराज को गोद ले लिया जिससे जयचन्द शत्रुता करने लगा जो आखिर तक चलती रही। पृथ्वीराज के बड़ा होने की, युद्धों की, प्रेम की, विवाहों की इसमें अनेक गाथाएं हैं। ईर्षावश जयचन्द राजसूय यज्ञ करता है, जिसमें पृथ्वीराज के न आने पर उसकी मूर्ति बनाकर द्वार पर खड़ी कर देता है। जयचन्द की पुत्री संयोगिता का पहले से पृथ्वीराज से प्रेम होने के कारण उसने वरमाला मूर्ति के गले मे डाली, जिससे नाराज़ होकर उसके पिता ने उसे एक एकान्त महल मे नज़रबन्द कर दिया जहां से पृथ्वीराज अपने सामन्तों की सहायता से उसे उड़ा ले गया और बड़ा घमसान युद्ध करता हुआ सेना और सामन्तों के भारी नुकसान के साथ दिल्ली पहुंचा। ऐश मे दिन बीतने लगे। ऐसे ही समय शहाबुद्दीन ने चढ़ाई की। वह कई बार पहले भी चढ़ाई करके हार के जा चुका था। पृथ्वीराज ने उसे अनेक बार पकड़ कर उदारतावश छोड़ दिया था। अब के उसके साथ जयचन्द भी मिल गया था। इस बार पृथ्वीराज हारा और बन्दी बनाकर गजनी ले जाया गया। वहां उसकी आंखें निकलवा दी गई। कुछ समय पश्चात् चन्द भी वहां पहुंचा और तरकीब से अखाड़े में पृथ्वीराज के शब्द वेधी बाण द्वारा शहाबुद्दीन को मरवा दिया। बस यही कथा समाप्त होती है। कहा जाता है कि चन्द ने अपने गजनी जाने से पहिले २ का ग्रन्थ लिख कर जाते वक्त पूरा करने का आदेश देकर अपने पुत्र जल्हन को संभाल दिया था। उसने शेषांश पूरा किया। चन्द और पृथ्वीराज वहीं अखाड़े में एक दूसरे के खड्ग प्रहार से मारे गये थे।

कविता की दृष्टि से यह ग्रन्थ उस समय का सर्वोत्तम ग्रन्थ है। चन्द ने प्रकाण्ड [illegible] होने के कारण इसमें [illegible] [illegible] चमत्कार लाने

का सफल प्रयास किया है। अलंकारों का, गुणों का, रसों का और उनकी सामग्री का यथोचित सन्निवेश है। विषय या प्रकरण के अनुसार ही विभिन्न छन्दों का प्रयोग हुआ है, जिनमें मुख्य कवित्त, दोहा, त्रोटक, छप्पय, रोला आदि वीर रस में और शृंगार में कोमल छन्दों (चौपाई जैसे) का प्रयोग हुआ है।

छन्द अलंकार और कवित्व सबकी दृष्टि से यह ग्रन्थ महाकाव्य की कोटिका ग्रन्थ है। इसके वर्णन, चाहे वे शृंगार के हैं, और चाहे वीर के सजीव और प्रभावोत्पादक हैं। छन्दों में वीर रस के अन्य छन्दों के अतिरिक्त बथुआ जैसे कुछ एक सर्वथा नवीन छन्दों का भी चन्द ने उपयोग किया है, जो अन्यत्र नहीं मिलते।

रासो की भाषा सर्व स्वीकृत पिंगल है, जो बहुत सुगठित, विषय और शैली के अनुरूप बदलती हुई, प्रभाव और प्रवाह दोनों से युक्त, सामर्थ्यं-वती है, जिसमें संस्कृत, प्राकृत से लेकर पंजाबी फारसी तक के शब्दों का व्यवहार है। भाषाओं के इसी सम्मिश्रण के कारण रासो के अनेक स्थल दुरूह हो गये हैं। इसके अतिरिक्त आदि से अन्त तक भाषा एक जैसी नहीं। कहीं बारहवीं सदी की सी है, तो कहीं मध्ययुग की सी और कहीं खुसरो से मिलती हुई। फिर भी भाषा अधिकांश में काव्य की कसौटी पर पूरी उतरती है। प्रक्षिप्त अंशों से तो उस काल का कोई ही साहित्यिक ग्रन्थ अछूता बचा होगा। पृथ्वीराज रासो भी नहीं बचा। उसमें भी अनेक प्रक्षिप्त स्थल हैं। लेकिन भाषा के विषय में इतना विभेद सर्वत्र नहीं, बीच बीच में उपलब्ध होता है।

एक छोटा सा उदाहरण लीजिये

> षपी सेन सुरतान, सुट्टि छुट्टि चावद्दिसि।
> मनु कपाट उग्घर्‌यो, कूह फुट्टिय दिस विद्दिसि॥
> मार मार मुष किन्न, लिन्न चांवड उपारे।
> परे सेन सुरतान, जाम इक्कह परिवारे॥

प्रश्न—पृथ्वीराज रासो की ऐतिहासिकता के विषय में क्या मत-विभेद प्रचलित हैं, उनका निष्कर्ष दो।

इत्तर प्रधानतया निम्न कारणों से पृथ्वीराज रासो की ऐतिहासिकता और प्रामाणिकता के विषय में सन्देह किया जाता है।

१. रासो के कथानक की घटनाएं, सोमेश्वर का अनंगपाल की पुत्री से विवाह, पृथ्वीराज का गोद जाना, राणा समरसिंह का पृथ्वीराज का समकालीन होना आदि, इतिहास में नहीं मिलतीं।

२. इसकी भाषा कई सदियों में समय समय पर लिखी गई जान पड़ती है, अतः यह मूल पुस्तक नहीं हो सकती।

३. इसके सन् सम्वत् इसी काल के अन्य इतिहास ग्रन्थों, शिलालेखों, ताम्रपत्रों आदि के सम्वतों से नहीं मिलते। उनमें बहुत अन्तर है, आदि आदि।

किन्तु इतना सब कुछ होने पर भी पृथ्वीराज रासो अपने काल की प्रतिनिधि और सबसे परिपक्व रचना है, इससे इन्कार नहीं किया जा सकता। जयचन्द के दरबार में वर्तमान एक कवि के आधार पर चन्दबरदायी नामक एक कवि पृथ्वीराज के सामन्तों में अवश्य था। उसने अपने राजा की स्तुति में यह ग्रन्थ भी अवश्य लिखा होगा। समय के प्रवाह में भाटों, चारणों के मुखों में पड़ कर इसके रूप का कायापलट होता गया--समय समय पर क्षेपक अंश भी अवश्य जोड़ दिये गये होंगे। घटनाओं में भी परिवर्तन संभव है। इसी प्रकार संवत् उस समय एक से अधिक प्रचलित थे। कुछ एक इतिहासविदों ने नन्द वंश के शासन काल को निकाल कर चन्द संवतों का ऐतिहासिक संवतों से सामंजस्य बिठाने का प्रयत्न किया भी है। संभव है आगे खोज में इस समय की और अधिक सामग्री मिलने पर इस विषय में सन्देह दूर हो सके। तो भी रासो जैसे वृहद् उच्च कोटि के काव्य ग्रन्थ को अनैतिहासिक कह कर काम नहीं चल सकता। इसमें अपने समय की आत्मा पूर्णतया प्रतिफलित हुई है। और नाहीं इसका सर्वांश ही इतिहास-विरुद्ध है। वस्तुतः तो अभी इस विषय में बहुत छानबीन की आवश्यकता है।

इस समय बने रासो की परम्परा में आगे हम्मीररासो का नाम आता है, जो हम्मीरदेव की स्तुति में है।

प्रश्न—योग पन्थियों का संक्षेप में परिचय देते हुए बताइये उन्होंने हिन्दी के विकास में क्या सहयोग दिया।

उत्तर भारत के इस संघर्ष काल में जहां एक ओर वीरता का प्रवाह बह रहा था, वहां दूसरी ओर आध्यात्मिक क्षेत्र भी सूना नहीं था। उसमें भी उथल पुथल मच रही थी। बौद्ध कापालिकों ने जनता की धार्मिक आस्था विकृत करदी थी। उसी समय कुछ एक यौगिक चमत्कारों के बल पर प्रसिद्धि प्राप्त करके मत्स्येन्द्रनाथ ने एक योगपंथ की भी स्थापना की जिसमें आगे गोरखनाथ हुए। इन लोगों ने प्रधानतया अपना कार्यक्षेत्र पश्चिमोत्तर भारत को बनाया और ये योग की सिद्धियों के द्वारा जनता को प्रभावित कर उन्हें अपने पथ मे सम्मिलित करते थे। स्वभावतः इन लोगो ने अपने प्रचार का साधन देश-भाषा के उसी रूप को चुना जो इस प्रदेश मे बोली जाती थी, जिसमें आगे चलकर खुसरो ने लिखा और जो हमारी आज की खड़ी बोली की ओर झुका सा है। अवश्य ही, योगियो नाथों की भाषा ऊबड़खाबड़, प्रारम्भिक अवस्था में और देशाटन के कारण अनेक प्रदेशों की भाषा के शब्द लिए थी, पर इनके इस योग प्रचार के कारण भाषा के क्षेत्र का विस्तार हुआ और उसे प्रोत्साहन मिला। इस परम्परा में निम्न योगियों के नाम आते हैं, जिन्होंने इस भाषा में योग-वर्णन किया।

१ गुरु गोरखनाथ अपने सम्प्रदाय में मत्स्येन्द्रनाथ से उतर कर इन्हीं का स्थान है। ये आसाम के रहने वाले और अपने गुरु के प्रधान शिष्य थे। अपने मत प्रचार के इन्होंने अनेक ग्रन्थ लिखे, जिनमे से कुछ एक सबदीपद, अभैयात्रा, सांख्य दर्शन, प्राणसङ्कली आदि हैं। ये लगभग ११५० के वर्तमान थे। इन्हीं के समय में, जालंधर, कणेरी आदि गुरुओं के भी नाम आते हैं।

इनके अतिरिक्त इस परम्परा में चर्पट १२८० १२३०, बालानाथ १२ वीं १४ वीं शताब्दी, धुंधलीमल १४४२, पृथ्वीनाथ १७ वीं सदी आदि के नाम और मिलते हैं।

प्रश्न प्रचलित पिंगल भाषा के प्रबन्ध या रासो ग्रंथो और डिंगल के वीर गीतों के अतिरिक्त अन्य कौन सी रचनाएं इस काल मे पाई जाती हैं

अथवा इस काल की अन्य फुट-कल रचनाएं कौन सी हैं, जिनकी भाषा पिंगल या डिंगल नहीं?

उत्तर राशे ग्रन्थों की पिंगल और डिंगल भाषाओं के अतिरिक्त देश-भाषा के बोलचाल के दो और रूप भी विकसित हो रहे थे, एक पूर्वी जिसमें विद्यापति ने कृष्ण राधा के प्रेम वर्णन के कुछ पद्य लिखे और दूसरा पश्चिमोत्तरी जिसमे खुसरो ने लिखा।

अबुलहसन अमीर खुसरो अमीर खुसरो के पूर्वज बलखबुखारा से तेरहवीं सदी के प्रारम्भ में आकर एटा जिले के पटियाली गांव में आबाद हुए थे। खुसरो बड़े विद्वान् और प्रतिभाशाली कवि थे। ये अरबी, फारसी हिंदी के विद्वान् थे, संस्कृत से भी पर्याप्त परिचय रखते थे। इन्होंने ९९ पुस्तकें लिखी थी। इनके अनेक घटनाओं से भरे जीवन में दिल्ली के तख्त पर ११ सुलतान बैठे थे, जिनमे से ७ की इन्होंने सेवा की थी। ये धार्मिक कट्टरता से ऊपर बड़े उदार पुरुष थे। इन्हे हिन्दी और उसके साहित्य में विशेष रुचि थी। दूसरे, अब मुसलमान यहां जम चुके थे, अतः सभी समझदार उदार मुसलमान यह अनुभव कर रहे थे कि हिन्दु मुसलमान परस्पर मिल जायं। इसी उद्देश्य से मुसलमानो को देश भाषा का ज्ञान कराने के लिए खुसरो ने खालिकबारी नाम का फारसी हिन्दी का कोष लिखा। हिन्दी के प्रति इनके हृदय में बहुत आदर था। इनकी दृष्टि में हिन्दी अरबी आदि की तुलना मे किसी बात मे कम नहीं थी, यह इन्होंने स्पष्ट स्वीकार किया है। इन्होंने देश-भाषा के बोलचाल के पश्चिमोत्तरी रूप को अपनाया, जिसमें फारसी शब्द भी मिले हैं। वह भाषा आधुनिक खड़ी बोली का पूर्वरूप समझना चाहिये। इन्होंने फुटकल पद लिखे है। इनकी मुकरिया पहेलियां बहुत प्रसिद्ध हैं, इनमें से एक की नमूना देखिये:

एक नार ने अचरज किया।
सांप मार पिंजरे में दिया॥
ज्यों ज्यों सांप तेल को खाये।
सूखे तेल सांप मर जाये॥ (दियाबत्ती)

एक थाल मोती से भरा, सबके सर पर औंधा धरा।
चारो ओर वह थाल फिरै, मोती उससे एक न गिरै॥ (आकाश)

विद्यापति देश भाषा के बोलचाल के पूर्वी रूप मे लिखने वालों में विद्यापति का भी नाम आता है। ये जाति के मैथिल ब्राह्मण थे। इनकी जन्म भूमि तिरहुत प्रदेश मानी जाती है। ये १४०७ के लगभग हुए थे। ये बहुत मधुर कवि थे। मधुरता को तुलना में इनकी पदावली गीत गोविन्द से कम नहीं उतरती। इन्होंने राधाकृष्ण का श्रृंगार-वर्णन बड़ा सजीव और स्वाभाविक किया है, जिसे सुनकर महाप्रभु मग्न हो जाते थे। किन्तु इसका यह अभिप्राय नहीं कि ये कृष्ण-भक्त थे। वस्तुत तो ये शैव थे। इन्होने शक्ति की स्तुति मे अनेक पद लिखे हैं। राधा कृष्ण का वर्णन इन्होंने भक्ति के कारण नहीं किया, प्रत्युत श्रृङ्गार के अधिदेवता होने के कारण इन्होंने कृष्ण का वर्णन किया है। यही कारण है कि इनका श्रृङ्गार वर्णन भक्ति को मर्यादा से कहीं बाहर निकल कर हुआ है। किंतु क्योंकि इनकी रति का आलम्बन अलौकिक कृष्ण था इस लिये यह भी भक्ति काव्य मे आ गया है। इन्होंने हिन्दी में (मैथिली हिन्दी मे) राधा कृष्ण विषयक फुटकर पद्य लिखे हैं। वैसे, अपभ्रंश में इन्होंने अपने आश्रयदाता तिरहुत के राजा शिवसिंह की स्तुति में दो पुस्तके, कीर्तिलता और कीर्तिपताका और भी लिखी हैं जिनका जिक्र पहले आ चुका है।

मध्य-युग

प्रश्न भक्तिकाल या पूर्वमध्यकाल की साधारण साहित्यिक रूप-रेखा दो।

उत्तर पूर्व मध्यकाल या भक्तिकाल हिन्दी साहित्य मे स्वर्ण-काल माना जाता है। कारण, इस समय का साहित्य सत्य शिव और सुन्दर तीनों है। इस समय के साहित्य ने भारतीय निराश जनता को सम्बल प्रदान किया, जिसके आधार पर उसका जीवन बना रहा। भक्ति को यह प्रखर धारा कई रूपों में होकर बही और प्रत्येक रूप ने हिन्दी साहित्य को अनु-

पथ रहा दिये। हिन्दी में सर्व प्रथम यह धारा ज्ञान को लेकर चली जिसमें कबीर मुख्य हुए। ये लोग ईश्वर और जीव का मुख्यतया ज्ञान के द्वारा सम्बन्ध मानते थे और ज्ञान द्वारा ही मुक्ति मानते थे। इस धारा के प्रवर्तक कबीर माने जाते हैं।

इसी प्रवाह के पश्चात् या साथ ही साथ कुछ मुसलमान सूफी फकीर भी एक नई पद्धति पर काव्य-रचना कर रहे थे। थे वे भी सन्त ही, एकेश्वर-वादी, पर वे जीव और ईश्वर का सम्बन्ध प्रेम का मानते थे, और उसी के द्वारा ईश्वर की उपासना और अन्ततोगत्वा प्रेम के द्वारा ही मुक्ति (लौकिक स्थूल बन्धन—व्यक्तित्व या जीवत्व दशा से छुटकारा) की प्राप्ति में विश्वास करते थे। इनमें अग्रणी या विशेष आद्रित जायसी थे। इन दोनो (ज्ञान मार्गी और सूफी) धाराओं का आधार एक ही था, अर्थात् एकेश्वर-वाद आदि दार्शनिक सिद्धान्त।

इसी आध्यात्मिक प्रवाह की एक धारा परमात्मा के सगुण रूप के आधार को लेकर चली। यह ईश्वर और जीव का भक्ति (यह भी रति का ही रूप है किन्तु इसमे आदर और श्रद्धा विशेष होती है अतएव देवतादि विषयक रति की भक्ति या भाव संज्ञा है।) का सम्बन्ध मानकर चले थे। इस सगुण धारा की एक उपधारा ईश्वर के रामरूप को लेकर चली, जिसमें प्रमुख तुलसीदास हुए और दूसरी कृष्ण रूप को लेकर चली, जिसमें प्रमुख सूरदास हुए।

यह सब साहित्य सार्वजनिक साहित्य था, इसमें कृत्रिम सौन्दर्य या बनावट नाम को नहीं थी। यह साधारण व्यक्तियों के हृदय की सच्ची पुकार थी जो उतनी ही सचाई और सादगी से व्यक्त भी हुई थी। किन्तु इसी के साथ या इसके कुछ पश्चात् राजाओं रजवाड़ो (जो अब मुगल प्रभुत्व में आ चुके थे और विलास मे दिन बिता रहे थे) के दरबारों मे एक और विला-सिता या शृंगार का, दरबारी वेशभूषा लिये, बहुत कुछ कृत्रिम साहित्य भी बना। उसमे भी अन्य नीति आदि विषयों के साथ राधाकृष्ण का भी वर्णन है, किन्तु कवियो का आधार वहां भक्ति न होकर शृंगार हुआ है। इस

काल में काव्य सम्बन्धी रीति-ग्रन्थों का अधिकतया निर्माण हुआ। इसलिए इसको रीतिकाल ही कहा भी गया है। यह काल १९ वीं शताब्दी के अन्त तक चलता है।

इस समस्त ४०० से ९०० तक के काल मे हिन्दी साहित्य में भक्ति का जो प्रवाह बहा वह विभिन्न धाराओं मे विभिन्न भाषाओं का आधार लेकर बहा। कबीरदासियों ने गोरखपंथियों से प्राप्त सधुक्कड़ी मिश्रित भाषा का आश्रय लिया जिसमें पूर्वीपन अधिक है, जो आज की खड़ी बोली के काफी निकट है। जायसी-प्रमुख सूफियों ने अपने काव्यों मे प्रमुखतया अवधी को स्थान दिया, जो कि विद्यापति से प्राप्त बोल-चाल का एक (उनके प्रदेश का) पूर्वी रूप था। सगुण भक्ति वालों में रामाश्रयियों ने भी अवधी को ही अपनाया। परन्तु कृष्ण भक्ति वालो ने व्रज का अपनाया। रीति-काल में भी यही भाषा साहित्य की रही।

इतने दिनो के संघर्ष के पश्चात्, इसी समय मे आकर भारतीय समाज को कुछ शान्ति का लाभ मिला था। सो, यह काल संगीत, साहित्य और कलाओं की सभी की दृष्टि से मध्यकाल के इतिहास मे स्वर्ण-काल माना जाता है। यह काल औरङ्गजेब से थोड़ा पहिले तक चलता है। औरङ्गजेब ने अपनी लोकद्वेषिणी नीति से अपने समय में ही मुगल साम्राज्य को विनाश के अन्तिम संघर्ष में ग्रस्त कर दिया था, जो अन्त मे अंग्रेजों की राज्य-स्थापना के समय तक चलता रहता है और शक्तिशाली मुगल साम्राज्य को साथ लेकर ही शान्त होता है।

प्रश्न—मध्ययुग की राजनैतिक, धार्मिक और सामाजिक दशा का संक्षेप में परिचय दो।

उत्तर मुसलमानों के साथ संघर्ष का अन्त हो जाने के साथ ही वीरगाथा काल की भी समाप्ति हो जाती है। हम्मीरदेव के साथ ही भारत की प्रतिरोध शक्ति प्रायः समाप्त हो चुकती है। देश का अधिकांश भाग मुगल प्रभुत्व को स्वीकार कर चुका था। राजा लोग अपने भाग्य पर सन्तोष करके मुगल छत्रछाया में रहते हुए विलास मे अपने दिन बिताने लगे थे।

दिल्ली में हुमांयू अकबर जैसे उदार शासकों का राज्य कायम हो चुका था। अराजकता प्राय: शान्त हो चुकी थी। राजे रजवाड़े भी अब आपस में प्रायः नहीं लड़ते थे। मुगलों की शक्ति अजेय हो चुकी थी। हां, राजपूताने में प्रताप जैसे विद्रोही देश भक्त चलते ही रहे, जिस परम्परा में आगे चलकर राजसिंह, शिवाजी, छत्रसाल आदि हुए। किन्तु यह संघर्ष सार्वदेशिक नही रहा था और साहित्य में तो प्राय: वीररस पर लिखना केवल परिपाटी का निर्वाह मात्र रह गया था। भट्ट चारण लोग अब वीर की बजाय अधिकतर शृंगार की कविताओं से अपने आश्रयदाताओं को प्रसन्न करने मे लग गये थे। वीरता के लिए कोई विषय भी नही रह गया था। मुगलों के विरुद्ध किसी राजा की वीरता का वर्णन करना (मुगल छत्रछाया मे होते हुए) तो विद्रोह समझा जाता राजा और भाट दोनो दण्ड पाते।

वीरगाथा काल के समय में जैसे भारत की राजनैतिक शक्ति छिन्न-भिन्न हो गई थी, उसी प्रकार उसकी धार्मिक दशा भी। प्रबल पराक्रम द्वारा बौद्ध धर्म को उखाड़ कर अपने अद्वैतवाद का प्रचार करके शंकराचार्य के निधन के अनन्तर दर्शन शास्त्र आदि का अध्ययन मनन आदि तो उच्च शिक्षित वर्ग में जरूर चलता रहा, पर सर्व साधारण के लिए यह विषय अग्राह्य ही रहा। लोग अंधेरे में टटोल रहे थे। कर्म का स्वरूप विकृत हो ही चुका था, ज्ञान अज्ञान के कारण पाखण्ड का विषय बन गया था, भक्ति का स्वरूप भी शंकर के प्रचण्ड ज्ञानोद्योत में दब गया था। ऐसे ही समय में १२ वीं सदी के मध्य में दक्षिण में स्वामी रामानुज ने शंकर के अद्वैतवाद का खण्डन कर अपने विशिष्टाद्वैतवाद की स्थापना की, और ज्ञान द्वारा मोक्ष प्राप्ति सर्व साधारण के लिए असम्भव समझ नारायण की सगुण रूप में उपासना प्रचलित की। एक मन्दिर भी स्थापित किया। इसी मत का विवेचन, प्रतिपादन, थोड़ी बहुत अपनी विशेषता (परिवर्तन, न्यूनता-अधिकता) के साथ मध्वाचार्य, निम्बकाचार्य, चैतन्य, रामानन्द, वल्लभाचार्य, विट्ठलदास आदि आचार्यों ने आगे चलकर किया। समय समय पर हरि, राम, कृष्ण, आदि भगवान् के अनेक रूपों की उपासना प्रचलित रही। किन्तु अभी तक यह सारा विवेचन संस्कृत मे ही हुआ था। देश-भाषाओं

में इसका उपदेश और प्रचार वस्तुत. रामानन्द आदि बाद के आचार्यों ने ही आरम्भ किया।

समाज की राजनैतिक और धार्मिक दशा के साथ २ उसकी अपनी दशा भी कम नष्ट-भ्रष्ट नहीं थी। अव्यवस्था का राज्य था। अनेक कुरीतियां घर कर गई थीं। गृहस्थ के, पत्नी, बहन, भाई के, परिजनों के आदर्श प्रायः लुप्त हो चुके थे। कर्तव्य शून्यता और स्वार्थपरता का बोलबाला था। एक एक घर में अनेक मत मतान्तर चलते थे। अत्याचार और उत्पीड़न में पड़कर धार्मिक विश्वास अस्त व्यस्त और भ्रान्त हो जाने के कारण ही सामाजिक शासन भी विश्रृंखलित हो रहा था। लोग नैराश्य में डूबे हुए थे। योग की सिद्धियां और शंकर का अद्वैतवाद सब के बस के नहीं थे। लोगों को उद्-विग्न और सर्वथा निराश मन को शान्ति देने का कोई उपाय नहीं सूझता था। स्त्री पुरुष, ऊंच नीच, छूआछूत जाति पांति के संकुचित विचारों में पड़ा हिन्दु समाज दिनों दिन छीज रहा था (इस समय का तुलसी ने अपनी विनयपत्रिका मे बड़ा मार्मिक वर्णन किया है)। इस समय दो बातों की आवश्यकता थी एक अपनी दशा पर सन्तोष करके आदर्श सामाजिक व्यवस्था में रहकर भगवदाराधना में शान्ति प्राप्त करने का और दूसरी नवागत विजेता मुसलमान जाति के साथ बिना किसी विरोध या भेद के प्रेम और समानता के साथ मिल बरतकर जीवन बिताने की। इन दोनों ही बातों को पूरा करने के लिए हमारे भक्त कवि प्रयत्नशील हुए हैं. जिनके मुख्य प्रतिनिधि हम तुलसी और कबीर जायसी को मान सकते हैं। कबीर ने ज्ञानोपदेश द्वारा जातिगत वर्णगत ऊंच नीच का भेद भाव मिटाकर दो विरुद्ध धार्मिक और सांस्कृतिक दृष्टिकोणों (हिन्दु-मुसलमान) को मिलाने का प्रयत्न किया तो तुलसी ने हिन्दु समाज के सामने रामायण में उसके (समाज के विभिन्न और विकृत आदर्शों का आदर्श चित्र उपस्थित किया। जायसी ने कबीर का ही उद्देश्य प्रेम के प्रचार द्वारा पूरा किया।

प्रश्न ज्ञानाश्रयी शाखा का संक्षेप में परिचय देकर उसके प्रवर्तक कबीर का वर्णन करिये।

उत्तर भक्ति की उस धारा को, जो ज्ञान का आधार लेकर चली ज्ञानाश्रयी शाखा कहते हैं। इसके प्रवर्तक कबीरदास थे, जिन्होंने अपना गुरु

स्वामी रामानन्द को बताया है। ज्ञानाश्रयी शाखा के अनुयायी अद्वैतवादी हैं, वे ज्ञान के द्वारा शुद्ध ब्रह्म की प्राप्ति मे विश्वास करते हैं और तदनुसार अपना जीवन सरलता पवित्रता से बिताना चाहते हैं। वे ईश्वर और जीव का ज्ञान द्वारा सम्बन्ध स्थापित करते हैं। वे सगुण रूप में विश्वास नहीं करके "निगु ण सगु ण से परे" राम मे ध्यान लगाते हैं और योग मार्ग मे विश्वास करते हैं। ज्ञान के द्वारा ही वे हिन्दु मुसलमान और छूतछात के जाति-पांति और धर्मकृत भेद भाव से ऊपर रहकर सब मे समदृष्टि रखने का उपदेश देते हैं। परिश्रम द्वारा, ज्ञानपूर्वक सम और प्रेम भाव से जीवन-यापन करने में ही उनके मत से जीवन की पूर्णता है। इस पथ के साहित्य मे कवित्व की अपेक्षा, धर्म-समाज-सुधार की भावनाएं विशेष मिलती हैं। वस्तुत ये कवि सुधारक और सन्त कवि थे। इस पंथ के प्रवर्तक महात्मा कबीर हैं। इन्हीं के (धर्म के, मत के, चरित्र के और भाषा के भी) आदर्शों को मानकर इनके पंथ मे आगे अनेक ज्ञानाश्रयी सन्त कवि हुए जिनमें सब नहीं तो अधिकतर अपने को इनका शिष्य मानते थे।

कबीर के आदर्श को सामने रख इस धारा के आगे के प्रायः सभी कवियो ने ईश्वर माया, जीव, सृष्टि, लोक-व्यवहार—नीति, गुरु, शब्द और नाम, ज्ञान वैराग्य आदि विषयों का उन्ही की शैली में अपनी अपनी विशेषताओ के साथ लिखने का प्रयास किया है।

कबीर इनका जन्म मरणकाल १४ ५६–१५ ७५ माना जाता है। इनकी जाति के विषय मे कुछ निश्चय नहीं, न माता पिता का ही पता है। पंथ में प्रचलित किम्वदन्तियों के आधार पर एक विधवा ब्राह्मणी को स्वामी रामानन्द के वरदान से गर्भ हो गया था। वह पुत्र होने पर उस नवजात शिशु को एक लहरतारा नामक तालाब पर रख आई, जहां से उसे नीमा नीरु नामक एक मुसलमान जुलाहा दम्पति उठा लाया। पाल पोसकर बड़ा किया। यही बालक आगे चल कर कबीर हुआ।

कबीर के हृदय में बचपन से ही ज्ञान पिपासा थी। घर के अपने बुनने के काम में दक्ष होने पर भी उसके हृदय को शान्ति नहीं थी। वह साधु सन्तों के पास बैठने की चेष्टा करता तो वे नीच समझ उसे, कुछ बताते नहीं

थे। साथ ही माता पिता भी उसके इस कृत्य पर आपत्ति करते थे। पर उनकी आपत्ति विफल होकर अन्त में शान्त हो गई थी। स्वामी रामानन्द छूत-छात और ऊंच नीच के भेद-भाव को दूर करके भक्ति का द्वार सब के लिए खोलना चाहते थे। संयोगवश वे काशी आये तो कबीर को एक तरकीब बनाकर उनके चरण पकड़ कर राम नाम का गुरु मंत्र लेने का अवसर मिला। कबीर प्रसन्न होकर भजन सत्संग करने लगे। कुछ लोग उन्हें शेख तकी का भी शिष्य होना कहते हैं। पर यह ठीक नहीं, क्योंकि उन्होंने अपनी कविता में तकी को इस रूप में (सुनबे सेख तकी) सम्बोधन किया है कि कोई गुरु को नहीं करेगा। कुछ भी हो, कबीर स्वयं अनपढ़ थे। उन्होंने जो कुछ ज्ञान प्राप्त किया वह केवल श्रवण और मनन द्वारा। उन्होंने हिन्दु मुसलमानों का बराबर सत्संग किया, सब से अच्छी अच्छी बातें लीं, देशाटन किया और फिर आकर काशी में जमे।

कबीर ज्ञानी थे, योग का, आध्यात्म्य का, और ईश्वर का वर्णन उन्होंने किया अवश्य है, पर उनका आधार अपनी अनुभूतियां या सुनी सुनाई बात होने के कारण वह अधूरा है, पूर्णाङ्ग नहीं। वे निर्गुण ब्रह्म के उपासक थे, जिसकी वे ज्ञान द्वारा अनेक भावनाओं से उपासना करते थे। आडम्बर और स्थूल कृत्रिम भेद-भाव से उन्हें चिढ़ थी। वे उनका बड़े कटु शब्दों में खण्डन करते थे। इस कार्य में वे हिन्दु मुसलमान का लिहाज नहीं करते थे। किम्वदन्तियों के आधार पर उनमें कई एक यौगिक सिद्धियों का होना भी कहा जाता है, किन्तु उनके विषय में प्रामाणिक ज्ञान अभी अधूरा है। कबीर जाति पांति के भेद भाव से इतना ऊपर थे कि हिन्दु उन्हें हिन्दू और मुसलमान मुसलमान समझते थे और मरने पर, कहा जाता है, दोनों में विवाद उत्पन्न होने पर उनके शव के स्थान में केवल पुष्प रह गये थे, जिनका बटवारा करके उनका अन्तिम संस्कार किया गया।

प्रश्न कबीर के साहित्य पर एक संक्षिप्त दृष्टि डालिये।

उत्तर कबीर का साहित्य बहुत विस्तृत है, जिस को बीजक कहते हैं। विषयों के अनुसार उसके फिर तीन भाग कर दिये जाते हैं शब्द, साखी

और रमैनी। छन्दों में इन्होंने विशेषतया दोहे का प्रयोग किया है और पद लिखे हैं जिनका आधार राग रागनियां है।

कबीर-साहित्य को विषय या शैली के आधार पर और तरह भी दो तीन भेदों मे बांटा जा सकता है। कुछ तो ऐसा है जिसमें उन्होने अपना सिद्धांत मत-प्रतिपादन आदि किया है, ईश्वर जीव के, ब्रह्म के, तत्वों के जगत के रहस्यों का वर्णन किया है। कुछ ऐसा है जिसमे उन्होने प्रचलित अनेक मत-मतान्तरो को सामाजिक कुरीतियों का कटु खण्डन किया है। इस में उन्होने हिन्दु मुसलमान किसी को नहीं क्षमा किया है। कुछ ऐसा भी है जिसमे उन्होने अपने आध्यात्मिक आनन्द की अनुभूतियों का अनेक रूपों में, उपमाओं और रूपकों मे वर्णन किया है। और कुछ ऐसा है जो रहस्य मूलक वर्णन है, जिन्हे उलटबांसियां भी कहते हैं, ऐसा साहित्य अत्यल्प है।

प्रश्न—कबीर की भाषा के विषय मे आलोचनात्मक विचार रखिये।

उत्तर कबीर की भाषा देशभाषा का वह रूप लिये है जिसका ढाचा उस समय पश्चिमोत्तर प्रदेशों में प्रचलित था और जो उन्हें योगमार्गी नाथो और खुसरो आदि कुछ एक लेखकों से प्राप्त हुआ था। कबीर ने इस भाषा को अधिकतया पूर्वीरूप देकर व्यवहार किया। भाषा का वह रूप प्रारंभिक था अत एव अव्यवस्थित भी। वही बात कबीर की भाषा में भी है। वह अव्यवस्थित, व्याकरण के नियमों से अनेकत्र बाहर है, अनेक भाषाओं के शब्दों से भरी है, शब्दों के रूप टूटे फूटे हैं, कारक, प्रत्यय, विभक्ति आदि भी भिन्न २ भाषाओं के हैं। किन्तु सब कुछ होते हुए भी वह समर्थ है, उसमे चुभन है, शक्ति है, व्यंग्य है चमत्कार और रस है। ऊबड़-खाबड़ अवश्य है पर कबीर को अपनी विशेषता लिये सधुक्कड़ी है।

प्रश्न कविता की दृष्टि से कबीर साहित्य पर विचार बताइये।

उत्तर कवित्व की दृष्टि से कबीर साहित्य में बहुत कमी है। उन्होने काव्य-परम्पराओं का उल्लंघन किया है। उनके रूपक अधूरे हैं, उत्प्रेक्षाएं अस्वाभाविक और उपमाएं अनेकत्र अपूर्ण हैं, चित्र अधूरे छूट गये हैं।

अनेक काव्यगत दोष आ गये हैं। इसका कारण कुछ तो कबीर का काव्य-नियमों से अनभिज्ञ होना है और कुछ प्राचीन परिपाटियों से विद्रोह या स्वतन्त्रता की उनकी प्रवृत्ति भी है। उन्होंने जान बूझ कर भी काव्यनियमों की अवहेलना की है (क्योंकि वस्तुतः उनका उद्देश्य कविता करना नहीं था, कविता उनके लिए एक शक्तिशाली साधन का काम दे रही थी।) और उनको उनका ज्ञान भी नहीं था। तो भी काव्य के बाह्य स्वरूप को छोडकर जहां तक उसके आन्तरिक भाव तत्व का प्रश्न है, वह कबीर-साहित्य में पूरा मिलता है, विशेषत जहां उन्होंने अपनी अनुभूतियों का वर्णन किया है और उनके पदों मे। इसके इलावा, उसमे चुभन है, चमत्कार है और शक्ति है। वस्तुत: तो कबीर ज्ञानी सन्त और सुधारक पहिले थे और कवि पीछे। कबीर के साहित्य के एक दो उदाहरण देखिये:

चलती चाकी देखि कै दिया कबीरा रोय।
दो पाटन के बीच में साबुत रहा न कोय॥
सूरा सोई सराहिये लडे धर्म के हेत।
पुरजा पुरजा होई रहै तऊ न छांडै खेत॥
आदि आदि॥

प्रश्न— इस शाखा के अन्य कवियों का संक्षेप में परिचय दो।

उत्तर मत, सिद्धान्त, साहित्य और भाषा शैली की दृष्टि से आगे आने वाले प्राय: सारे सन्त कवि लगभग एक जैसी विशेषता रखते हैं। सब ने कबीर के समान, शब्द, ब्रह्म, योग, माया, जीव, जगत्, नाम, गुरु के गुण गाये हैं और नीति, लोक व्यवहार, आडम्बरों की निन्दा, लोभ, मोह, ऊंच नीच के भेद-भाव की निन्दा और शुद्धता, सरलता, परिश्रम की प्रशंसा आदि पर भी लिखा है। उनमें कुछ एक ने अपने अपने थोड़ी विशेषता के साथ अलग अलग मत भी चलाये, पर वे सब कबीर-पन्थी ही कहलाते हैं। सब निर्गुण ब्रह्म के उपासक, आडम्बरों से दूर, सत्य सरल आचरण-पूर्ण जीवनयापन द्वारा ज्ञान-उपासना करने का उपदेश देते हैं। इनमें से कुछ एक मुख्य निम्न हैं:

गुरु नानक—ये सम्वत् १५२६ में जिला लाहौर के तलवंडी ग्राम में कालूचन्द नामक खत्री के घर उत्पन्न हुए थे। ये जन्म से वैरागी थे। इनका घर के काम-काज, व्यवसाय में मन नहीं लगता था। ये घर से देशाटन को निकल पडे और मक्का मदीना, मध्य एशिया तक घूम कर वापिस आये थे। इनकी कबीर से भेंट हुई और उनके अनुयायी बन गये। वहां से आकर ये हिन्दू मुसलमानों के पारस्परिक संघर्ष से अशान्त पंजाब मे अपने मत का प्रचार करने लगे। आगे चल कर ये ही सिख सम्प्रदाय के आदि-गुरु हुए। कबीर की तरह इनकी वाणी भी सीधी-सादी, सरल स्वाभाविक सौन्दर्य लिये, कृत्रिमता से दूर है और इन्होंने भी हद, अनहद, आदि योग के अङ्गों, जीव, ईश्वर, माया, ब्रह्म, शब्द, जगत् का दोहों, शब्दों चौपाइयों मे वर्णन किया है। जगत् को मिथ्या बता कर, आडम्बर और भेद-भाव से ऊपर रह कर, सत्य, न्याय, दयापूर्वक आचरण करते हुए जीवन बिताने का आदेश दिया है। इनकी भाषा में पंजाबी की अधिकता स्वाभाविक रूप से आ गई है, वैसे वह कबीर वाली ही है। उदाहरण'

इस दम दा मैनूं की बे भरोसा, आया आया न आया न आया।
यह संसार रैन दा सुपना, कही देखा कहीं न दिखाया॥

दादूदयाल ये १६०१ में अहमदाबाद में उत्पन्न हुए थे। इनकी जाति के विषय में सन्देह है, कोई इन्हे ब्राह्मण और कोई चमार या धुनिया कहते हैं। इनकी रुचि भी जगत् की ओर नहीं थी। इनके गुरु का पता नहीं, पर इन्होंने अपनी कविता में कबीर का नाम बहुत बार सादर लिया है, इसलिये विश्वास किया जाता है कि ये कबीर को गुरु मानते थे। १६६० में इन्होंने जयपुर राज्य में एक भराने की पहाड़ी पर शरीर छोडा। इन्होंने भी अपनी वाणी में शब्द, नाम, गुरु, ईश्वर आदि का वर्णन किया है। इनके मत में तर्क की अपेक्षा हृदय की अनुभूति का अधिक महत्व है। एक उदाहरण देखिये'

भाई रे! ऐसा पन्थ हमारा।
द्वै पख रहित पन्थ गह पूरा॥

वाद विवाद काहू सो नाहीं।
मैं हूँ जग में न्यारा॥

मलूकदास—ये जिला इलाहाबाद, कड़ा नामक गांव में उत्पन्न हुए और १७३९ मे इनकी मृत्यु हुई। ये औरङ्गजेब के समय में हुए। ये भी निर्गुण-उपासक कवि थे। इन्होंने वैराग्य और प्रेम का वर्णन किया है। इनकी दो पुस्तकें रसखान और ज्ञान-बोध प्रसिद्ध हैं। सन्तों में ये कुछ अधिक पठित थे, अतएव इनकी भाषा अधिक शुद्ध ब्रज है। एक उदाहरण

अजगर करै न चाकरी पंछी करै न काम।
दास मलूका कह गये सब के दाता राम॥

सुन्दरदास—इनका जन्म संवत १६५२ में जयपुर राज्य के एक धौसा नामक स्थान में एक गरीब वैश्य घर में हुआ। ये छः वर्ष की अवस्था में ही दादू के शिष्य हो गये। बाद में काशी जाकर संस्कृत, हिन्दी, फारसी आदि का अध्ययन किया और आकर फतहपुर (शेखावटी) में रहने लगे। सन्त कवियों में ये विशेष विद्वान् थे। अतएव इनकी कविताओं मे, रस, भाव और यमक अनुप्रास आदि अलंकारों का प्रचुर सौन्दर्य है। इनकी भाषा भी परिमार्जित ब्रजभाषा है। भक्ति ज्ञान वैराग्य आदि के अतिरिक्त आप ने देशाचार और अपने पर्यटन के अनुभवों का भी विशेष वर्णन किया है। इन्होंने कवित्त और सवैये का प्रधानतया उपयोग किया है। एक उदाहरण:

ब्रह्म तें पुरुष और प्रकृति प्रगट भई
प्रकृति तें महत्तत पुनि अहंकार है।
अहंकार हूँ ते तीन गुण सत रज तम।
तम हूँ तें महाभूति विषय अपार है॥

इनके अतिरिक्त, धर्मदास, पलटू साहब, तुलसी साहब, आदि अन्य भी सन्त कवि हुए, पर वे इन्हीं विशेषताओं से युक्त थे और प्रायः सबने इन्हीं विषयों पर, इसी ढंग मे, इसी फुटकल पद्यों (दोहा आदि) की प्रणाली में कविता लिखी।

प्रश्न—सन्त-साहित्य का मूल्य-निर्धारण करो।

उत्तर कवित्व की दृष्टि से निर्गुण सन्त-साहित्य का चाहे इतना महत्व न हो, पर समय की आवश्यकता को पूरा करने का जहां तक प्रश्न है, इसकी देन अमूल्य है। भारतीय जाति के बड़े विकट और आपत्ति काल में इन्होंने (सन्तों ने) उसके हृदय और मस्तिष्क को बल दिया। इस साहित्य का सम्बन्ध वस्तुत: निम्न वर्ग से था, उच्चवर्ग इस ओर आकृष्ट नही हो पाया। पर सर्वसाधारण के प्रति भी इनका जो उपकार था, वह भुलाने योग्य नहीं। भारतीय निर्माण में सन्त साहित्य का विशेष योग है।

★

प्रेममार्गी शाखा

(सूफी कवि)

प्रश्न—हिन्दी में प्रेम मार्गी सूफी साहित्य का एक साधारण विवेचनात्मक संक्षिप्त परिचय दो।

उत्तर जब मुसलमान इस देश में आकर बस गये और उनका राज्य स्थापित हो गया तो उनके साथ अनेक मुसलमान महात्मा फकीर लोग भी आये थे और यहीं रह गये थे। उनमें अनेक सिद्धि वाले महात्मा भी थे। उन्हीं में कुछ सूफी फकीर या मुसलमान प्रेमयोगी कवि भी थे। उन्होंने यहां आने पर अपने और यहां के दार्शनिक सिद्धान्तो में बहुत एकता पाई। वे यहां की आध्यात्मिक, यौगिक सिद्धियों से प्रभावित हुए बिना नहीं रहे। दूसरे, उनके अतिरिक्त अन्य समझदार उदार मुसलमान भी थे, जो यह जानते थे कि मुसलमानों को अब यहां के लोगों में ही रहना है इसलिए उन्होंने सबने दोनों हिन्दू मुसलमान धर्मों का और संस्कृतियों का भेद-भाव मिटाकर विजेता और विजित में एकीकरण या समन्वय उपस्थित करने की चेष्टा की। सूफी लोग इस कार्य मे सब के आगे आये, क्योंकि उनके सिद्धान्तों मे संकुचितता को स्थान नहीं था। वे तो एकेश्वरवादी और ईश्वर को अखण्ड प्रेम का आगार देखते थे उसी के प्रेम का जलवा उन्हें सर्वत्र नजर आता था। वे लौकिक प्रेम में भी अलौकिकता देखते थे और लौकिक प्रेम के द्वारा ही अलौकिक प्रेम की

प्राप्ति का ईश्वर मिलन का विश्वास करते थे। भारतीय दर्शन सिद्धान्त एकेश्वर ब्रह्म और प्रकृतिवाद में इन लोगों को अपने सिद्धान्त से समानता मिली। सो, इन्होंने सूफी मत और भारतीय दार्शनिक अद्वैतवाद के समन्वय से एक नई पद्धति को जन्म दिया, जो काव्य में जायसी प्रमुख कवियों ने अपनायी और अन्य महात्मा फकीर साधुगण वैसे इस मत का प्रचार करते रहे। बंगाल में इसी तरह के एक सत्य पीरपन्थ भी चला था जिसका उद्देश्य उसके नाम से ही प्रकट होता है जिसमें हिन्दी फारसी का सम्मिश्रण है।

हिन्दी के सूफी मुसलमान कवियों ने यहीं के कल्पित या ऐतिहासिक कथानक लेकर, यहीं की लोकभाषा में, यहीं के छन्दों और अलंकारों में यहीं का रंग देकर लौकिक प्रेम के बहाने या रूपक के द्वारा अलौकिक प्रेम की विशेषतः विरह की अभिव्यञ्जना की। इनकी भाषा कुछ की अवधी है और कुछ की ब्रज। वर्णन में इन्होंने ईश्वर जीव सृष्टि आदि को लिया है और अलौकिक ईश्वर प्रेम की विशेषतः विरह या प्रेम की पीर की विशद अभिव्यञ्जना की है। छन्दों में अधिकतर दोहा चौपाई आदि का प्रयोग किया है। रचनाएं काव्य की ओर उसके उपादानों की दृष्टि से उत्तम हैं, सरस हैं। हां, कथानक जरूर आधुनिक दृष्टि से अतिरंजित या अस्वाभाविक है।

प्रश्न—इस काल के मुख्य मुख्य कवियो का ऐतिहासिक काल-क्रम से संक्षिप्त वर्णन करो।

कुतबन— इन्होंने १५६० में मृगावती नामक प्रेम काव्य की रचना की. जिसमें लौकिक प्रेम और उसमें वर्तमान आत्म-समर्पण के वर्णन द्वारा अलौकिक ईश्वर प्रेम की अभिव्यक्ति की है।

इनके प्रेम-काव्य का कथानक संक्षेप में इस प्रकार है चन्द्र गिरि के राज कुमार का कंचन नगर की राज कुमारी से प्रेम हो जाता है। वह उसने की विद्या के द्वारा राज कुमार से बच कर उड़ जाती है। बाद में राज कुमार उसके विरह में वनों में भ्रमता हुआ एक अन्य सुन्दरी राज कुमारी का एक राक्षस से उद्धार करता है। अन्त में उसे मृग वती भी मिल जाती है और वह दोनों से विवाह करता है। पश्चात् राज कुमार की हाथी से गिर कर

मृत्यु हो जाती है। रानियाँ सती होती हैं। काव्य में विरह, शृंगार और अन्त में आत्म-समर्पण की व्यंजना है। एक उदाहरण :

रुक्मिनी पुनि वैसे ही मरि गई
कुलवन्ती सत सों सति भई॥
बाहर वह भीतर वह होई।
घर बाहर को रहे न जोई॥

मंझन इनके काल का कुछ पता नहीं। पर क्योंकि जायसी ने इनका अनेक बार अपनी पुस्तक में नाम लिया है इस लिए निश्चित है ये उनसे पूर्व या उनके सम काल में हों। इन्होंने मधु मालती नामक प्रेम-काव्य लिखा, जिसकी अब एक अपूर्ण प्रति प्राप्त होती है। इसका मृगावती की अपेक्षा कथानक की रोचकता, वर्णन-वैचित्र्य, प्रकृति वर्णन और रस चमत्कार की दृष्टि से अधिक मूल्य है। पर यह काव्य अधूरा मिलता है। इसका कथानक संक्षेपतः इस प्रकार है:

कनेसर के राज कुमार मनोहर को परियाँ सोते हुए को महासर की राजकुमारी मधुमालती के पास ले आती हैं। दोनों एक दूसरे को देख कर परस्पर आसक्त हो जाते हैं। परियाँ फिर राजकुमार को घर छोड़ आती हैं। राजकुमार विरह में व्याकुल हो उसकी खोज में योगी बन निकलता है। रास्ते में समुद्र मे पोत टूट जाने पर जंगलों में भटकता है। वहीं वह चित विसरामपुर की राज कुमारी प्रेमा को एक राक्षस से बचाता है, पर उसके पिता के कहने पर भी उससे विवाह को तैयार नहीं होता। प्रेमा के यहाँ उसे मधुमालती फिर मिलती है। किन्तु इस मिलन से क्रुद्ध होकर मधुमालती की मां उसे शाप से पक्षी बना कर उड़ा देती है। उसे एक और तारा चन्द नामक राज कुमार पकड़ ले जाता है, किन्तु उसकी कथा सुन उसे उसके माता पिता के पास ले फिर आता है और वह मंत्र बल से फिर अपने असली रूप में आजाती है। तारा चन्द उससे विवाह को राजी नहीं होता। अन्त में मनोहर को बुला कर शादी करदी जाती है। एक दिन राजकुमार ताराचंद झूला झूलते प्रेमा को देख कर बेसुध हो जाता है। बस यहाँ से आगे प्रति अपूर्ण है। एक उदाहरण लीजिये:

देखत ही पहिचानेऊं तोही।
एहि रूप जेहि छुन्दर्‌यो मोहीं।
एहि रूप बुत अहै छुपाना।
एहि रूप रब सृष्टि समाना॥

मलिक मुहम्मद जायसी—ये शेरशाह सूरी के समकालीन लगभग १६वीं शताब्दी के अन्तिम चरण में थे। इनके गुरु प्रसिद्ध सूफी फकीर शेख मोहदी थे। इनके अतिरिक्त इन्होंने अन्य साधु सतों, महात्माओं और फकीरों के सत्संग से भी वेद, कुरान, पुराण, इतिहास आदि का पर्याप्त ज्ञान प्राप्त किया था, जिसका पता इनके साहित्य के पढ़ने से लगता है। ये बहुत कुरूप थे, माता के दाग़ और एक आंख बैठी हुई। पर इन पर इस बात का जरा भी असर नहीं था। एक बार अपनी कुरूपता पर हंसने वाले को इन्होंने यह उत्तर दिया था कि, 'मेरे पर क्या हंसते हो उस बनाने वाले पर हंसो।"

इनका साहित्य अपेक्षाकृत अन्य सभी सूफी कवियों से उत्कृष्ट है। इन्होंने प्रधानतया अवधी में और दोहा चौपाई पद्धति में लिखा है। इन्होंने तीन पुस्तकें लिखी हैं, अखरावट, आखरी कलाम और पद्मावत। अखरावट में वर्णमाला के एक एक अक्षर से प्रारम्भ करके ईश्वर जीव सृष्टि के रहस्यों से भरी चौपाइयां हैं। आखरी कलाम में भी सिद्धान्त की बातें हैं। पद्मावत इनकी सर्वोत्कृष्ट काव्य रचना है, जो भाव, भाषा, रस, अलङ्कार आदि से युक्त उत्कृष्ट कोटिका काव्य ग्रन्थ है। इसमें आये विभिन्न देशों की भौगोलिक और अन्य वस्तु स्थिति आदि के वर्णनों से अन्दाज होता है कि इन्होंने बहुत भ्रमण किया था। इन्होंने विभिन्न देशों की प्रकृति के दृश्यों का सुन्दर वर्णन किया है। अन्य कवियों के सदृश इन्होंने केवल प्रेम की ही अभिव्यञ्जना नहीं की, अपितु, मानव-स्वभाव की प्रेम, विरह और आत्मसमर्पण आदि की उत्कृष्ट भावनाओं के साथ, ईर्षा, द्वेष, डाह आदि अपकृष्ट भावनाओं का भी उचित चित्रण किया है। जायसी का विरह-वर्णन अद्भुत और अति स्वाभाविक माना जाता है। भाषा कहीं कहीं दुरूह हो जाती है पर सरसता में कहीं कमी नहीं आती। कहीं कहीं वर्णनों में

नीरसता आ गई है, विशेषत: जहां जायसी सरसता और स्वाभाविकता को छोड़ कर फल फूलों या भोज्य पदार्थों की सूची गिनाने लगते हैं। पर-देशीय होने के कारण वहां की वस्तुओं के प्रति अपनी जानकारी प्रदर्शित करने की भावना के अतिरिक्त इस प्रवृत्ति का और क्या कारण हो सकता है? इस काल का इन्हें प्रमुख कवि माना जाता है। पद्मावत का कथा-संक्षेप यह है।

सिंहलद्वीप के राजा गन्धर्व सेन की पुत्री पद्मावती विश्व-सुन्दरी थी। पर योग्य वर के अभाव में विवाह नहीं हुआ था। उसके पास एक हीरा-मणि नामक सुन्दर गुणी तोता था। वह एक बहेलिये के हाथ मे पड कर चित्तौड के एक ब्राह्मण के हाथ में बिक गया, जिसके पास से चित्तौड के राजा रत्न सेन ने एक लाख रुपए में खरीद लिया और महल में नाग मती नामक अपनी पटरानी के पास भेज दिया। रानी के सामने एक दिन उसने पद्मावती की प्रशंसा की तो वह ईर्षा में जल गई और उसने तोते को मारने के लिए एक दासी को दे दिया। दासी ने उसे न मार कर राजा को सौंप कर सारी कहानी बताई। राजा तोते से पद्मावती की प्रशंसा सुन, उसके प्रेम मे पागल हो, योगी बन, १६ हजार अन्य योगी राजपूतों को साथ ले सिंहल-द्वीप की ओर तोते के बताये मार्ग से चला। सिंहल-द्वीप में एक शिव-मन्दिर में डेरा डाला। तोते से खबर पा पद्मावती शिव-दर्शन के बहाने मन्दिर में आई। राजा देखकर मूर्छित हो गया। रात को शिव मन्त्र के बल से गढ़ में जाने की उसने चेष्टा की तो पकडा गया और फाँसी का दण्ड मिला। सुन कर उसके अन्य साथी योगी गढ़ पर चढ दौड़े। गन्धर्व सेन ने हार कर अपनी पुत्री पद्मावती का ब्याह रत्नसेन से कर दिया और वे सब उसे लेकर चितौड़ आये। वहाँ एक दुष्ट ब्राह्मण ने दिल्ली आकर अला-उद्दीन को पद्मिनी के रूप गुण की प्रशंसा सुनाई। वह बेताब हो गया। राजी खुशी पद्मिनी को प्राप्त करने में जब वह सफल नही हुआ तो उसने चढ़ाई करदी और छल से सन्धि करली। निमंत्रण मे शीशे में उसने पद्मिनी का प्रतिबिम्ब देखा तो वह और भी मोहित हो गया। रत्नसेन जब उसे विदा करने गढ के फाटक तक आया तो उसे वह जबर्दस्ती पकड कर

दिल्ली ले आया। पद्मिनी को पता लगा तो वह (७००) सात सौ डोलियों में सिपाही छुपा छल से दिल्ली आई और अलाउद्दीन से राजा से एक बार मिल कर उसके महल में पहुंच जाने की इजाजत मांगी। पद्मिनी राजा के पास जेल में गई और उसे घोड़े पर चढ़ा कर भगा दिया और स्वयं लड़ती भिड़ती चित्तौड़ पहुंची। रत्नसेन की गैरहाजरी में कुम्भनेर के राजा देवपाल ने भी पद्मिनी से ऐसा ही अनुचित प्रस्ताव किया था। रत्नसेन को जब पता लगा तो वह देवपाल पर चढ़ दौड़ा। युद्ध में दोनों मारे गये। चित्तौड़ में रत्नसेन के शव के साथ रानिया सती हुई। अलाउद्दीन जब चित्तौड़ पहुंचा तो उसे पद्मिनी की केवल भस्म ही हाथ लगी। इस सरस और अद्भुत प्रेम कथानक का आधार जायसी ने एक ऐतिहासिक घटना को बनाया है। स्पष्ट ही अपने विषय या रस के अनुकूल उसने उसमें स्वतन्त्रता पूर्वक परिवर्तन किया है। पर इससे उसके काव्यत्वमें कोई व्याघात नहीं पड़ता। इस शाखा के अन्य कवियों ने प्रायः कल्पित कथानक घड़े हैं। जायसी ने कथानक ऐतिहासिक लेने के साथ साथ द्वीपों आदि का भौगोलिक वर्णन भी किया है।

एक सरस और बृहद् रूपक द्वारा, इस काव्य में कवि ने उचित भाषा भूषा के साथ विलक्षण लौकिक प्रेम-वर्णन से अलौकिक ईश्वरीय प्रेम की बड़ी सुन्दर अभिव्यंजना की है। एक उदाहरण लीजिये: —

तन चितउर मन राजा कीन्हा, हिय सिंघल बुधि पद्मिनी चीन्हा।
गुरु सुआ जेइ पथ दिखावा, बिनु गुरु जगत को निरगुन पावा॥
नागमति यह दुनिया धंधा, बांचा सोई न एहि चित्त बंधा॥
राघव दूत सोई सैतानू, माया अलाउदीन सुलतानू॥

इस पद्य में कवि ने अपने ग्रन्थ के सारे रूपक का रहस्य दे दिया है, कि कौन किसका प्रतीक है।

उसमान इनका कविता-काल १६७० और स्थान गाज़ीपुर है। इनके गुरु निजामुद्दीन चिश्ती की शिष्य परम्परा में हुए हाजी बाबा थे। ये जहांगीर के समय में हुए थे। इन्होंने अपने प्रेम-कथानक का आरम्भ मुसलमानी ढङ्ग में पीर पैगम्बर बादशाह आदि की स्तुति के उपरान्त

किया है और मध्य में काबुल, बदख्शां, गुजरात, सिंहल द्वीप इंगलिस्तान आदि का वर्णन किया है जिससे इनके भौगोलिक ज्ञान का भी अनुमान होता है। जायसी या अन्य सभी सूफी कवियों के समान इनकी कहानी का भी आधार आध्यात्मिक प्रेम है, जिसकी मार्मिक व्यंजना इन्होंने एक लौकिक कल्पित प्रेम कथानक के रूपक द्वारा की है। काव्य की कथा का सार निम्न-लिखित है।

नैपाल का राजकुमार सुजान अपने मित्र भूतो के साथ रूपनगर की राजकुमारी की वर्षगांठ का उत्सव देखने गया तो चित्रशाला मे राजकुमारी चित्रावली का चित्र देख कर मोहित हो गया और अपना चित्र भी वही टांक कर वापिस आ गया। बाद मे हर दम उसकी चिन्ता मे घुलने लगा। उधर चित्रावली ने भी राजकुमार के चित्र पर आसक्त हो उसकी तलाश में जोगियों के रूप मे आदमी भेजे। सुजान ने अपने मित्र भूत की गढ़ी मे एक अन्न सत्र (सदाव्रत) खोल दिया और वहीं रहने लगा। संयोगवश एक जोगी से भेंट होने पर वह उसके साथ रूपनगर आता है और शिव-मंदिर मे राजकुमारी से भेंट करता है। दुर्भाग्य से फिर उसका साथ छूट जाता है और वह उसके विरह की पीर में जंगलों मे भटकता हुआ सागर गढ़ की राजकुमारी कमलावती की फुलवारी में जा विश्राम करता है। वह उसके सौंदर्य पर आसक्त हो, जब राजी से काम नहीं बनता तो छल से चोरी के इल्जाम मे उसे कैद करा देती है। इसी बीच में कमलावती को हर ले जाने के लिए एक और सोहिल नामक राजा चढ़ आता है, जिसे हरा कर अन्त मे सुजान कमला से विवाह करता है और उसे ले गिरनार को चल देता है। फिर चित्रावली के एक जोगी के साथ सुजान रूपनगर पहुँचता है। जोगी उसे बिठा कर राजकुमारी को खबर करने जाता है तो रानी द्वारा कैद करा दिया जाता है। उधर सुजान जोगी के न आने पर पागलों की तरह चित्रावली २ चिल्लाने लगता है। राजा उसे मारने को हाथी छोड़ता है पर वह उसे मार गिराता है। अन्त मे दोनों का प्रेम पहचान राजा दोनो का विवाह करा देता है। सुजान उसे लेकर रास्ते में से कमला को भी लेता

हुआ राजी खुशी अपनी राजधानी में लौट कर देर तक सुखपूर्वक राज्य करता है। एक उदाहरण देखिये:—

ऋतु वसन्त नौतन वन फूला, जहं तहं भौंर कुसुम रङ्ग भूला।
आहि कहां सो भंवर हमारा जेहि बिनु बसत बसंत उजारा॥

प्रश्न हिन्दी में सूफी साहित्य का क्या महत्व या मूल्य है?

उत्तर - हिन्दी में इन लोगों से पहले अधिकतर ज्ञान, योग, धर्म नीति आदि का वर्णन होता था। किंतु इन लोगों ने मानव मन की अमूल्य सम्पत्ति प्रेम को, लौकिक को और अन्तत: अलौकिक को अपनी कविता का आधार बनाया। ईश्वर देवतादि विषय का प्रेम भाव या भक्ति कहलाता है। अतएव कहा जा सकता है कि इन्होंने भी हिंदी में भक्ति की मन्दाकिनी बहाने में उचित योग दिया। इन्होंने विविध प्राजल वर्णनों से, मार्मिक अभिव्यञ्जनाओं से हिंदी में जीवन उत्पन्न किया, उसे साहित्य के अधिक उपयुक्त बनाया। दृश्य लौकिक और अदृश्य अलौकिक जगत् का समन्वय आध्यात्मिक रूप में, प्रेम रूप में स्थापित कर भक्ति का मार्ग प्रशस्त किया, जिससे संसार में सर्वत्र प्रेम ही प्रेम दिखाई दे। इनका हिन्दी साहित्य को यह एक भारी देन है।

रामभक्ति शाखा

प्रश्न रामभक्ति साहित्य का सरल और संक्षिप्त परिचय दीजिये।

उत्तर—इस शाखा या साहित्य का उदय स्वामी रामानन्द से होता है, जो १५ वीं शताब्दी के मध्य में हुए। रामानुज के द्वारा भक्ति का पुनरुद्धार होने के उपरान्त भी उसका स्थान अभी तक उच्चवर्ण के शिक्षित वर्ग में ही था। उसका विवेचन आदि भी संस्कृत में ही था। स्वामी रामानन्द ने समय की आवश्यकता को और भारतीय हिन्दु समाज की डांवाँडोल स्थिति को समझकर भक्ति का द्वार सब के लिए खोल दिया था और अपने प्रचार का भी मुख्य साधन संस्कृत के प्रकाण्ड पण्डित होते हुए भी देश भाषा को चुना था। उन्होंने हरि के रामरूप की उपासना प्रचारित की। कारण,

अनवरत आक्रमण और अत्याचार, योगियों के योग पाखण्ड और ज्ञानियों के ज्ञान वैराग्य और जगत् के प्रति मिथ्यात्व भावों के प्रचार ने समाज में सर्वत्र अव्यवस्था उत्पन्न कर दी थी। मनमानी हो रही थी, हिन्दु-समाज दिनो दिन क्षीण होता जा रहा था और आक्रान्ता समाज बढ़ रहा था। समाज के आदर्श लुप्त हो गये थे, विकृत रूढ़ियां रह गईं थीं । ऐसे काल मे भगवान् के लोक-रंजनकारी और समाज के आदर्श रूप राम की उपासना ही उपयुक्त हो सकती थी। स्वामी रामानन्द ने उसी को अपनाया। कबीर ने उनसे राम नाम लिया किन्तु उसके निर्गुण रूप का ध्यान किया। सगुण-भक्त तुलसी-प्रमुख कवियों ने राम के वाल्मीकि वर्णित लौकिक रूप को अपनाया और देश भाषाओं में, भक्ति में डूबकर प्रचलित छन्दों में रामचरित गाया, जिससे वह सर्वजन सुलभ हो सके। कहना नहीं होगा, अपने इस कार्य में वे पूर्ण सफल रहे।

इस शाखा के कवियों के सामने काव्य की दो भाषाएं चल रही थीं, अवधी और ब्रज। एक तीसरी कबीर वाली भाषा भी थी जो अभी काव्य के उपयुक्त नहीं थी। अवधी में जायसी लिखित दोहा चौपाई पद्धति का भी साहित्य वर्तमान था। अवध राम की जन्म-भूमि भी थी। रामभक्त कवियों ने स्वभावतः मुख्यतया अवधी और उसमे वर्तमान दोहा चौपाई पद्धति को ही अपनाया। इस काल के तुलसीदास सब बातों में अगुआ थे।

प्रश्न--हिन्दी साहित्य में रामभक्ति साहित्य का क्या स्थान या मूल्य है?

उत्तर हिन्दी के स्वर्ण काल का यह राम-भक्ति और कृष्ण-भक्ति-साहित्य स्वर्ण-साहित्य है, जिससे बढ़कर या जिसकी जोड़ का भी सत्य शिव और सुन्दर अन्य साहित्य हिन्दी अभी तक उत्पन्न नहीं कर सकी है। यह साहित्य वस्तुत एक पीड़ित पददलित निराश्रित असहाय जनता की अलक्ष्य के प्रति करुण पुकार है, जो इतनी ऊंची उठी और विस्तृत हुई कि आजतक दूर से दूर गांवों मे भी राम और कृष्ण के गान सुनने को मिलते हैं। इस साहित्य ने समाज को उसका आदर्श रूप दिया, उनकी डूबती आत्मा को एक प्रबल अवलम्ब दिया और हिन्दी को ऐसे बेजोड़ रत्न दिये जो वस्तुतः विश्व की आदरणीय वस्तु हैं।

प्रश्न – राम-भक्ति शाखा के मुख्य २ कवियों का ऐतिहासिक काल-क्रमशः संकेत और तुलसीदास का विशेषतः परिचय लिखो।

उत्तर इस शाखा के प्रवर्तक स्वामी रामानन्द और उन्नायक महाकवि तुलसीदास माने जाते हैं। राम-साहित्य में यद्यपि अन्य कवियों ने भी योग दिया है और कवित्व की दृष्टि से उनकी रचनाएं भी उत्कृष्टकोटि की हैं किन्तु तुलसी शशि के सामने वे सब तारक जैसे हैं। उनके प्रकाश में वे दब जाते है। क्रमशः वर्णन इस प्रकार है।

स्वामी रामानन्द ये राम भक्ति के प्रवर्तक माने जाते हैं। ये जाति के ब्राह्मण और रामानुज के अनुयायी भक्ति-मार्गी साधु थे। इनके गुरु बाबा राघवानन्द श्री सम्प्रदाय के वैष्णव थे। उनके मरने पर गद्दी पर बैठे और देशाटन किया। उत्तर भारत में रामावत सम्प्रदाय का प्रचार किया और राम की उपासना प्रारम्भ की। प्राचीन रूढ़ियों को छोड़कर इन्होंने स्त्री पुरुष शूद्र हिन्दु मुसलमान सब को राम भक्ति का मंत्र दिया। इनके शिष्यों में धुनिया, जुलाहे, चमार आदि नीच जाति के प्रसिद्ध भक्त हुए।

प्राचीन परिपाटी के अनुसार आपने मुख्यवादग्रन्थ तो अपने भी संस्कृत मे ही लिखे, किन्तु राम भक्ति के हिन्दी मे लिखे हुए आपके कुछ पद मिलते है। और कितना साहित्य आपने हिन्दीमे लिखा होगा यह अभी कुछ निश्चित ज्ञात नहीं हुआ। इनका काल १४२५ से १४५६ माना जाता है। उदाहरण के लिये इनके रचित हनुमान जी की स्तुति के पदको ले सकते हैं.

आरति कीजै हनुमान लला की।
दुष्ट दलन रघुनाथ कला की।

गोस्वामी तुलसीदास–राम भक्ति के प्रवर्तक स्वामी रामानन्द के बाद उनकी आत्मा ने साहित्यिक क्षेत्रमे तुलसीदासके रूपमे पूर्ण विकास प्राप्त किया था। राम भक्ति के रामानन्द यदि सूत्रकार थे तो तुलसी उसके विशद व्याख्याकार थे।

गोस्वामी जी के जन्म संवत् के विषय मे थोड़ा विवाद है। कुछ लोग तुलसीदास जी के समसामयिक और उनके शिष्य बाबा बेणीमाधवदास और रघुवरदास द्वारा लिखित तुलसी चरितो के आधार पर उनका जन्म और

मरण संवत् १५५४–१६८० मानते हैं और कुछ जार्ज ग्रियर्सन प्रमुख लोग प्रचलित किम्वदन्तियों के आधार पर जन्म संवत् १५८९ मानते हैं।

गोस्वामी जी यू० पी० बांदा जिले के राजापुर गांव के सरयूपारी ब्राह्मण थे। मूल नक्षत्र में उत्पन्न होने के कारण माता पिता ने इनका त्याग कर दिया था और इन्होंने बाबा नरहरिदास के साथ काशी जाकर रामानन्द जी के आश्रम में पालन-पोषण और वहां वर्तमान एक श्री शेषसनातन नाम के आचार्य से वेद वेदाङ्ग पुराण, न्याय, दर्शन, काव्य आदि की शिक्षा प्राप्त की। १६ वर्ष के अध्ययन के पश्चात् ये राजापुर लौटे और इनके पिता आत्माराम दुबे और माता हुलसी (जिनका जिक्र इनके समकालीन रहीम ने किया है) ने एक भारद्वाज गोत्र की ब्राह्मण कन्या से विवाह कर दिया। भावुक युवक तुलसी को अपनी पत्नी के बिना पल भर चैन नहीं पड़ता था। उसके मातृगृह जाने पर एक बार आप नौका न मिलने पर नदी तैर कर उसके पीछे जा पहुंचे। उसने उन्हें ताने से समझाया कि यदि वे उसके प्रेम में इतने मतवाले न होकर कहीं भगवान् के प्रेम में इतने विभोर होते तो उनका कल्याण हो जाता। तुलसी क बात लग गई और बाद में वे वैरागी हो गये। उन्हों ने वर्षों देशाटन किया। अयोध्या काशी मथुरा वृन्दावन इनके विशेष प्रिय स्थान रहे, जहां ठहर ठहर कर इन्होंने अपने ग्रन्थ लिखे। अपनी परिपक्वावस्था में ये स्थायी रूप से काशी में टिक गये थे जहां इन्हों ने १६३१ में अपना रामचरित मानस महाकाव्य लिखा। यहीं १६८० में काशी में फैली महामारी में इनका देहान्त हुआ। प्रसिद्धि के अनुसार इनसे चित्रकूट में सूरदास मिलने आये, उनके निमंत्रण पर फिर ये भी मथुरा आये। कहते हैं इनका रहीम और मीरा से भी पत्रव्यवहार हुआ था।

सिद्धान्त तुलसी रामानन्द के मत के अनुयायी, विशिष्टाद्वैत के मानने वाले, सेव्यसेवक भाव की भक्ति द्वारा आत्म-समर्पण कर मोक्ष प्राप्ति में विश्वास करने वाले, सरलता, पवित्रता, शुद्धता, सब में समदृष्टि रखने वाले, आत्म-सन्तुष्ट, भक्त कवि थे, रामायण जिनका स्फुट और पूर्णाङ्ग चित्र है, जो कि विश्व के लिए भी अनुकरणीय है।

साहित्य तुलसी साहित्य बड़ा विस्तृत है। इन्हों ने लगभग ७० ग्रन्थ लिखे बताये जाते हैं जो अब सारे नहीं मिलते। रामचरित मानस, विनय पत्रिका, दोहावली, गीतावली, कवितावली, कृष्ण गीतावली, आदि मुख्य है और इनके अतिरिक्त वैराग्य सन्दीपनी, बरवै रामायन, पार्वती मङ्गल, आदि छोटे छोटे अनेक ग्रन्थ हैं, जिनके पद्य परस्पर एक दूसरे ग्रन्थों में आते रहते हैं।

इनका साहित्य, साहित्य के भाव और कला दोनों पक्षो की दृष्टि से अनुपम है। भाव की गहनता, प्रवणता और विशदता जैसी इनके काव्य में हैं वह शिक्षित या अशिक्षित दोनों श्रोताओं को विभोर किये बिना नहीं रहती। उन्हों ने जीवन के किसी एक अंग का वर्णन नहीं किया। उनका वर्णन सर्वव्यापी है। जीवन के उन्होंने कुत्सित से कुत्सित और उत्तम से उत्तम अंशों का चित्र खींचा है, जिसमे सत् के प्रति प्रेरणा और असत् से विरक्ति की विश्वमंगल की भावना पद पद मे विद्यमान है। उन्हों ने आत्मा और परमात्मा, ब्रह्म और जीव, पुरुष और प्रकृति, लोक और परलोक, जड और चेतन का ऐसा अद्भुत समन्वय कर समाज का आदर्श रूप कल्पित किया है कि उसकी समानता नहीं मिलती। मानवमन की सूक्ष्म से सूक्ष्म भावनाओं के मूल में पहुंच कर विविध परिस्थितियो मे, विविध रूपों मे मार्मिक ढंग से उनका वर्णन करना गोस्वामी जी के लिए बड़ा सहज काम था, जिसका प्रमाण उनकी रचनाओं मे सर्वत्र उपलब्ध होता है। उनका साहित्य वस्तुतः सत्य शिव और सुन्दर है।

कलापक्ष की दृष्टि से भी इनकी रचनाएं अत्युच्च कोटि की हैं। प्रचलित और शास्त्रीय काव्य-पद्धतियो पर इनको पूरा अधिकार था। इन्होंने विषयानुरूप अनेक छन्दों का सफल और शास्त्रीय रीति से शुद्ध प्रयोग किया हैं जिनमे दोहा, सोरठा, चौपाई छप्पय, सवैया, कवित्त, दंडक छन्द आदि है। अलंकार, रस, रीति, गुण, आदि का इन्होंने समुचित रीति से अधिकार पूर्ण उपयोग किया है। काव्य के ये सब उपादान उनके आगे २ चलते थे। उनका देश वर्णन, प्रकृति वर्णन, आध्यात्मिक रंग में रंगा हुआ परम स्वाभाविक और अनूठा है।

भाषा उनके समय में दो काव्य-भाषाएं प्रचलित थीं- अवधी और ब्रज। ज्ञानमार्गी सन्तों की भाषा का रूप स्थिर और काव्य के अनुपयोगी था। तुलसी ने अवधी और ब्रज दोनों मे संस्कृत की मधुर चाशनी देकर समान अधिकार से दोनो में लिखा। अवधी में उन्हो ने रामचरित मानस जैसा महाकाव्य लिखा तो ब्रज में विनय पत्रिका, कृष्ण गीतावली आदि लिखीं। भाषा परिमार्जित, विषयानुरूपिणी, ललित, सुगठित और प्राञ्जल है। अपनी भाषा और कला किसी में भी तुलसीदास जी ने अस्वाभाविकता नहीं आने दी।

रामचरित मानस यह उनकी सर्वश्रेष्ठ रचना है। इसमें तुलसी के ज्ञान का, वैराग्य का, भक्ति का, उनके प्रेम का, दया का, महानता और दीनता का, उनके जीवन के चरम निष्कर्ष का, उनके पांडित्य और कवित्व का पूर्ण विकास है। यह वस्तुत. सार्वभौमकाव्य है, जिसका प्रभाव देश और काल की सीमा से परे हैं। यह राम के समस्त जीवन का एक पूर्णभक्त और रससिद्ध कवीश्वर द्वारा उपस्थापित पूर्णाङ्ग चित्र है। कथानक का मुख्य आधार वाल्मीकि रामायण होते हुए भी तुलसीदास ने अपनी भावना के अनुरूप उसका समास-व्यास आदि (परिवर्तन परिवर्द्धन) किया है। भाव, भाषा और काव्य कला की दृष्टि से यह ग्रंथ पूर्ण है। कवि की प्रतिभा का विकास सर्वतोमुख है। इन्होंने इसके अन्दर जायसी आदि की दोहा चौपाई पद्धति को अपनाया है और बीच बीच में सोरठा, छप्पय, कवित्त, सवैया आदि का भी प्रयोग यथा स्थान विभिन्न काण्डों के आदि अन्त मे किया है, जैसा कि महाकाव्य के नियमानुसार छन्द-भेद होना चाहिये। समस्त प्रचलित काव्यरीतियों अलंकारों आदि का समुचित सन्निवेश किया है। यह वस्तुतः समस्त जीवन का अखंड, पूर्ण चित्र है जो विश्व के लिए आदर्श है। ज्ञान-वैराग्य और योग मे पड़ कर सामाजिक जीवन में जब अनास्था उच्छृंखलता आ गई थी, भाई बहिन, पति पत्नी, पिता पुत्र, भाई भाई, माता पुत्र, राजा प्रजा, और मित्र शत्रु, सब के सब कर्त्तव्य शून्य बने हुए थे; सब के कर्त्तव्यों का आदर्श लुप्त हो चुका था, समाज लड़खड़ा रहा था; उस समय रामचरित मानस ने उसे सम्भाला, उसे

उसका असली रूप दिखाया और उसके सामने एक आदर्श उपस्थित किया। इस दृष्टिसे रामचरित मानस का मूल्य साहित्य, समाज देश और जाति सबके लिए अमूल्य है। इसके दृश्य मनोहर हैं, प्रकृति वर्णन सजीव है, भाव गहरे हैं और चित्र उज्वल हैं। कवित्व के साथ साथ इसमें हमें तुलसी के नाटकीय पाण्डित्य का भी विभिन्न कथोपकथनों में प्रचुर दर्शन होता है। लक्ष्मण-परशुराम या अंगद-रावण और या राम-वालि सम्वाद अद्भुत हैं।

विनय-पत्रिका—इसमें तुलसी ने गीतों में विभिन्न छन्दो में अपने समय की, समाज की, देश की, राज्य की, धर्म की, दुर्दशा का मार्मिक और कारुणिक वर्णन किया है। अन्त मे भगवान् के पास अर्जी भेजी है कि वे सुधि लें और यह ताप शाप, महामारी का क्लेश शान्त करें। इसकी भाषा संस्कृत मिश्रित शुद्ध मधुर व्रज भाषा है।

कृष्ण-गीतावली—रामायण के अतिरिक्त तुलसी दास जी ने कृष्ण की महिमा भी गीतो कवित्तों के रूप में, व्रज भाषा में गाई है। कृष्ण गीतावली उनके उन्हीं पद्यों का संग्रह है। कहते हैं उन्हें कृष्णजी ने भी राम रूप होकर दर्शन दिये थे। ऐसी ही किम्वदन्तियों के आधार पर सूर तुलसी की चित्रकूट मे भेंट होनी भी कही जाती है, जिन के निमन्त्रण पर तुलसी फिर मथुरा आये थे।

इनके अतिरिक्त उनके समस्त साहित्य-समुद्र का अवगाहन करना सहज नहीं। उनका साहित्य छोटे मोटे ग्रन्थों के रूप में बहुत बड़ा है। तुलसी अपने समय के हिन्दी साहित्य-जगत् के नेता थे, जो कि समय की उस समय की सबसे बड़ी आवश्यकता की पूर्ति थी। उदाहरण के लिए

रघुकुल-रीति सदा चलि आई।
प्राण जाहिं पर वचन न जाई॥

उनके राम चरित मानस का यह प्रसिद्ध पद्य याद करलीजिये।

इनके अतिरिक्त राम गुण गाने वाले इस शाखा में और भी कवि हुए हैं, जिन्होंने उत्कृष्ट रचनाएं की है, किन्तु तुलसी के सामने वे सब फीके पड़ जाते हैं। इनमे ऊपर तो क्या इनके पास तक भी कोई नहीं पहुंच पाया है। संक्षेप में उनके नाम आदि नीचे लिखे हैं।

स्वामी अग्रदास ये जयपुर राज्य के गलता नाम के स्थान के रहने वाले तुलसी दास के सम-कालीन १६३२ के लगभग वर्तमान थे। वल्लभ-सम्प्रदाय में दीक्षित होते हुए भी इन्होंने राम के गीत गाये। इन्होंने ध्यान-मंजरी, राम ध्यान मंजरी आदि और फुटकल पद लिखे। उदाहरण:

पहरे राम तुम्हारे सोवत, मैं मति मन्द अन्ध नहीं जोवत।
अप मारग मारग मैं जान्यो, इन्द्री पोषि पुरुषारथ मान्यो॥

नाभादास ये अग्रदास के शिष्य और तुलसी दास के समकालीन थे। इनकी तुलसी जी से भेंट भी हुई थी। इनका काल १६४२ से १६८० तक अनुमान किया जाता है। इन्होने भक्तमाल नामक ग्रन्थ में समस्त भक्तों की कविता में संक्षिप्त रूप में जीवनियां या प्रशस्तियां लिखीं। इसके ऊपर १७६९ में एक अन्य सन्त प्रियदास ने टीका की। इसका एक उदारण.

त्रेता काव्य निबन्ध करी सत कोटि रामायण।
इक अच्छर उच्चरे ब्रह्म हत्यादि पलायन॥
अब भक्तन सुख देन बहुरि लीला विस्तारी।
रामचरन रसमत्त रहत अहनिसि व्रत धारी॥

प्राण चन्द चौहान १६६७ मे रामायण महा नाटक लिखा जो केवल नाम मात्र का नाटक है, रंग मंच के उपयुक्त नही। नाटकीय विशेषता उस में केवल यह है कि समग्र राम—कथानक कथोपथन के ढग में लिखित है। एक उदाहरण:-

जो सारद माता करु दाया।
बरनौं आदि पुरुष की माया॥
जेहि माया कह मुनि जग मूला।
ब्रह्मा रहे कमल के फूला॥

हृदय राम इन्होंने भी १६८० मे संस्कृत के हनुमन्नाटक के आधार पर हिन्दी में एक हनुमन्नाटक लिखा। यह भी रंग मंच के उपयुक्त न होकर केवल कथोपकथन या सम्वाद रूपमे ही है कविताबद्ध। उदाहरण. -

देखन जौं जाऊं तौ पठाऊं जमलोक, हाथ
दूजो न लगाऊं वार करूं एक कर कौ।

मींजि मारौं उरते उखारि भुज दण्ड, हाथ
तोरि डारौं वर अवलोकि रघुवर को॥

कृष्ण भक्ति शाखा

प्रश्न कृष्ण भक्त कवियों के साहित्य का एक परिचयात्मक साधारण विवरण दो।

उत्तर इस धारा के कवियों का आधार मुख्यतया कृष्ण की भक्ति था। इन सबने राधा और कृष्ण की लीला का वर्णन किया है। एक ओर रामानुज के विशिष्टाद्वैतवाद के आधार पर उनके शिष्य रामानन्द कबीर तुलसी आदि राम भक्ति का प्रवाह बहा रहे थे, तो दूसरी ओर मध्वाचार्य ने भागवत धर्म के आधार पर विष्णु के कृष्ण रूप की भक्ति का चलन किया। उन्होंने रामानुज के विशिष्टाद्वैतवाद के स्थान में भागवत के आधार पर द्वैतवाद की स्थापना की। इसका दक्षिण में पर्याप्त प्रचार हुआ। इसी के प्रभाव में सर्व प्रथम विद्यापति ने राधा कृष्ण के शृंगार का वर्णन गीतों में किया। इसी में आगे चल कर वल्लभाचार्य ने योग दिया। उन्होंने कुछ विशेषता के साथ भक्ति के एक नये पुष्टि-मार्ग की उद्भावना की। और इस प्रकार कृष्ण साहित्य की यह परम्परा चल पड़ती है।

इस साहित्य के वर्णन का मूल विषय कृष्ण और राधा है। ये लोग कृष्ण को साक्षात् आनन्द कन्द परमात्म तत्व समझते थे। उसकी दया प्राप्त करने के लिए ये उसकी आराधना करते थे। भागवत में वर्णित कथा के आधार पर कृष्ण का जीवन प्रत्येक दिशा में पूर्ण था। वीरता, भोग, ऐश्वर्य, राज-नीति, धर्म नीति, युद्ध कौशल, ज्ञान और विज्ञान, आदि कोई भी ऐसा क्षेत्र नहीं था जिसमें वह सर्वोपरि न हो। उसके जीवन में जीवन के समस्त रसों की पूर्ण उद्भावना थी। किन्तु वह फिर भी सच्चिदानन्द की तरह निःसंग दशा में रहता था। इन भक्त कवियों ने उसके [illegible] के विशेषतया कोमल — वात्सल्य के, प्रेम के, रास के, [illegible] ही अपनाया

बेजोड वर्णन किया। इनकी भक्ति की भावना सेव्य-सेवक भाव से थी। किन्तु उनकी रास या गोचारण आदि की लीलाओं के वर्णन में वह सख्य भाव में बदल जाती थी। कृष्ण के विशाल जीवन के इन्हीं मधुरतम अंशों को लेकर इन भक्त शृङ्गारिक कवियों ने अपने हृदय की समस्त मधुरिमा के साथ भाव मे डूब कर काव्य लिखा है। विषय के अनुरूप ही मधुर भाषा भी व्रज है, जो इन भक्त कवियों की भाव-गंगा में अवगाहन कर पुनीततर और परिमार्जित हो गई है। इस धारा के सर्वोत्कृष्ट सर्व-प्रमुख कवि सूरदास हैं।

प्रश्न कृष्ण-साहित्य का हिन्दी मे क्या स्थान है ?

उत्तर कृष्ण-साहित्य का भी हिन्दी में वही महत्वपूर्ण स्थान है जो राम-भक्ति साहित्य का। दोनों साहित्य वस्तुत. हिन्दी के स्वर्ण काल के स्वर्ण-साहित्य हैं। हां दोनो के स्वरूप और उद्देश्य में थोडा अन्तर अवश्य है। एक संसार को मधुरता से भरना चाहता है तो दूसरा आदर्श व्यवस्था से। दोनों ही साहित्य एकान्त स्वान्त. सुखाय और त्रस्त समाज के मन को अवलम्ब और शान्ति देने की मंगल प्रेरणा से ओत प्रोत हैं। इन्होंने कृष्ण के जिस आर्तत्रायक और प्रेममय रूप का वर्णन किया है उससे बडे बडों के भक्ति मे डुबकियां लगाते हुए सिर झूम जाते है। व्रज भाषा की तो इस साहित्य में ऐसी अभ्यर्थना हुई कि बड़े २ दर्बारों में उसका मान हो गया और फिर तो इसमें साहित्य की धारा अबतक बहती आ रही है। संगीत को सूर और मीरा के पद न मिलते तो वह अधिकतर मूक ही रहता उसका रूप विशेषतया तानारीरी (तरानों) का ही रहता। कृष्ण-भक्ति काव्य की मधुरिमा विधर्मियों मुसलमानों के भी सर चढ़ कर बोली-वे लोग भी उसको उसी तल्लीनता से सुनते थे जैसे कि हिन्दु। वस्तुत: यह साहित्य विश्व में अनुपम है और हिन्दी कोष भाण्डार की तो एक अमूल्य निधि है।

प्रश्न सूफी प्रेम काव्य, रामभक्ति काव्य, और राधा कृष्ण काव्य का परस्पर क्या अंतर है ?

उत्तर शृंगार और भक्ति दोनो का आधार रति (प्रेम) नामक स्थायीभाव होता है। किन्तु रति का आधार मानव नायक नायिका से भिन्न अन्य माता, पिता, पुत्र, गुरु, देवता, ईश्वर, आदि होने से उस को भाव

या भक्ति कहा जाता है और अन्यथा अर्थात रति का आधार पुरुष नायक नायिका होने पर शृंगार कहा जाता है। सूफी प्रेम काव्य में रति के आधार सहायक कारण लौकिक पद्मिनी रत्नसेन आदि है, इसलिए वह शृंगार काव्य है किन्तु रूप के द्वारा वहां आध्यात्मिक प्रेम की ध्वनि निकलती है इस लिए वह भक्ति काव्य के अन्तर्गत भी आ जाता है। किन्तु वाच्य रूप मे वह एक उत्कृष्ट प्रेम-काव्य ही रहता है।

रामभक्ति काव्य में भक्त की तल्लीनता सेव्य-सेवक भाव से सर्वत्र प्रकट रहती है। इनमें राम के कोमल वात्सल्य, प्रेम, आदि कोमल रूपो पर ही बल न देकर उनके लोकरंजक गोब्राह्मण प्रतिपालक, कर्त्तव्य-पालक आदर्श रूप को मुख्यता दी गई है। उधर कृष्ण भक्त कवियों ने कृष्णके अधिकतर कोमल रूपको अधिकतया अपनाया है। उन्होंने सात्विक अलौकिक प्रेम के द्वारा मानव-हृदय की चिरन्तन प्रेम-पिपासा की शान्ति की। सूफियों के प्रेम का साक्षात् लौकिक और परम्परा या व्यंग्य रूप से अलौकिक (ब्रह्म) आलंबन था। किन्तु कृष्ण-भक्तों के काव्य मे आलंबन कृष्ण ही अलौकिक था। अतएव इनका सारा शृङ्गार साहित्य भक्ति में आ जाता है। रामभक्ति साहित्य में मर्यादा है, व्यवस्था है, उतनी तल्लीनता या मधुरता नही है जितनी कृष्ण साहित्य में है, विशेषत: जहां इसमें डूब कर कवि सख्यभाव से राधा-कृष्णकी लीला का वर्णन करने लगता है, वहा कवि अपना आदर भान भूल जाता है।

प्रश्न—इस धारा के मुख्य कवियों का पूर्वापर कालक्रम से संक्षिप्त परिचय दो।

उत्तर

विद्यापति—इस कृष्ण-भक्त परम्परामें सर्व प्रथम मैथिल कोकिल विद्यापतिका नाम आता है। पहिले इनका वर्णन हो चुका है। इन्होंने पदो में कवित्तोंमे हिन्दी के पूर्वी रूप में राधा कृष्ण के प्रेम का वर्णन किया है—जो गीता-वली के रूप मे सग्रहीत मिलता है। इनकी भाषा में हिन्दी, बंगला और विहारी का सम्मिश्रण है। अत: कोरी हिन्दी जानने वालों के लिए दुरूह सी हैं। किन्तु मधुरता और रसमयता में संस्कृत के प्रसिद्ध गीत कार

जयदेव से उतरकर इन्हीं को स्थान दिया जाता है। ये वस्तुतः कवि पहले थे और भक्त पीछे। इनकी कविता में भक्ति की अपेक्षा रसिकता अधिक है। इस रसमयता में अतएव इनका श्रृङ्गार वर्णन कहीं कहीं भक्ति के औचित्य की सीमा से बाहर निकला भी प्रतीत होता है। वैसे ये शिव और शक्ति के उपासक थे और कृष्ण का वर्णन इन्होंनें श्रृंगार के देवता होने के नाते किया है। किन्तु, अलौकिक आलम्बन होने के कारण इनकी गीतावली को भक्ति-काव्यों में ही स्थान दिया गया है। इनका काल १४०७-१४६० है। इनके ऊपर विष्णु स्वामी निम्बकाचार्य आदि का प्रभाव पडा था।

वल्लभाचार्य--माधव सम्प्रदाय में वल्लभाचार्य का स्थान सर्व प्रमुख है। क्योंकि विशेष रूप से कृष्ण भक्ति का प्रचार करने का श्रेय इन्ही को है। इन्हीं के अगले शिष्य-सम्प्रदाय ने कृष्ण भक्ति को चरम सीमा तक पहुंचाया था। ये १५३५ १५८० के काल में थे। इनके पिता विष्णु सम्प्रदाय के थे। इन्होंने भक्ति की नवीन, अपनी विशेषता लिए, व्याख्या की और अपने मत-प्रतिपादन के लिये संस्कृत में वेदान्त सूत्र, अणु भाष्य आदि वाद ग्रन्थ लिखे। ये अपने शुद्धाद्वैत वाद के अनुसार कृष्ण और सच्चिदानन्द शुद्ध ब्रह्म में कोई भेद न मान कर कृष्ण को ब्रह्म रूप मानते थे। जगत के चराचर रूप को उसी का पसारा मानते थे। इनके मत में मुक्ति ज्ञान से नही लिखी प्रत्युत कृष्ण की दया विशेष से लिखी है जिस पारमात्मिक दया का नाम इन्होंने पुष्टि रखा, जिससे इस सम्प्रदाय का नाम भी पुष्टि मार्ग हो गया। इनके मत से पुष्टि (कृष्ण की दया) के द्वारा ही अज्ञानावरण को छिन्नकर शुद्ध कृष्ण रूप हो जाने का नाम ही मुक्ति हैं। इन्होने व्रज भाषा में राधा-कृष्ण का वर्णन किया।

इन्होंने व्रज भूमि के गोवर्द्धन नामक स्थान पर अपना मठ और कृष्ण की मूर्ति स्थापित कर अपने सम्प्रदाय का प्रचार किया था।

ये तैलंग ब्राह्मण थे और १५८० मे दिवंगत हुए।

विट्ठल दास ये वल्लभ स्वामी के पुत्र और १५१५ से १५८५ के काल में हुए थे। ये व्रज भाषा के अच्छे कवि और गद्य लेखक भी थे।

इन्होंने फुटकल कविताओं के अतिरिक्त गद्य में एक मुण्डन नामक ग्रन्थ भी लिखा था। इन्होंने अपने सम्प्रदाय के आठ सर्वोत्कृष्ट भक्त कवियों को चुनकर "अष्ट छाप" की स्थापना की थी। इन आठों मे चार उनके पिता के शिष्य थे और चार उनके अपने शिष्य थे। इन में सूरदास सब मे प्रमुख थे। अष्टछाप के कवियों के नाम सूरदास, नन्ददास, कृष्णदास, परमानन्द-दास, कुम्भनदास, चतुर्भुजदास, छीतस्वामी, गोविन्द स्वामी, ये थे।

सूरदास ये १५४०में आगरा रुनकता नामक ग्राम में, भक्त-माल और चौरासी वैष्णवों की वार्ता के आधार पर, एक सारस्वत ब्राह्मण परिवार में उत्पन्न हुए थे। कुछ लोगों के मत से ये चन्दवरदाई के वंशज भाट थे। किंवदन्ती के आधार पर इन्हें जन्मान्ध कहा जाताहै किन्तु साहित्य समाज में यह बात मान्य नहीं। कारण, सूर ने सौन्दर्य का, प्रकृति का और रंग रूप आदि का जैसा वर्णन किया है वह बिना एक बार देखे किसी जन्मान्ध के लिये संभव नहीं। ये भेंट होने पर वल्लभाचार्य के शिष्य हो गये और भक्ति के आवेश मे राग रागनियों में पदों में राधा कृष्ण के गुण गाया करते थे। इनके सूर सारावली, साहित्य लहरी और सूर सागर प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं।

सूर सागर मे सवा लाख पदों का संग्रह बताया जाता है, किन्तु आजकल केवल उसमें छः सात हजार पद मिलते है। इस ग्रन्थ के प्रथम नौ स्कन्धों मे विनय के पद, सृष्टिक्रम, चौबीस अवतार, प्राचीन राजा लोग और भागवत मत की आध्यात्मिक व्याख्या आदि और वर्णन है और अन्त के स्कन्ध में भागवत के आधार पर कृष्ण चरित का वर्णन है। सूरदास ने कृष्ण के जीवनके अन्य अंशो का संकेत मात्र करते हुए उनके मधुर कोमल रूप का—अर्थात उनके बचपन का, बाल क्रीडा का, गोपी प्रेम और रास लीला का, शृंगार के संयोग और वियोग रूपों का विशेष वर्णन किया है।

सूर ने जीवन के जिन रूपों का वर्णन किया है, उनमें वे अन्य कवियों से बहुत आगे बढ गये है। शैशव का, मातृस्नेह का, बाल-लीला का, गोपी-प्रेम और गोपियों के विरह का सूर ने जैसा वर्णन किया है, वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। सूर ने भक्ति के भाव में डूब कर लिखा है और यह भक्ति उनके प्रत्येक पद से चुई पडती है। मानव-प्रकृति का सृष्टि के रहस्यो का, प्रेम का

विरह का सूर ने बड़ा सूक्ष्म और गहन वर्णन किया। विषय का चित्र उपस्थित हो जाता है। सूर की भक्ति सख्य-भाव की तो थी ही किन्तु जहां वे कृष्ण की बाललीला, रासलीला या प्रणय का वर्णन करने लगते हैं वहीं वह सख्य भाव से भी आगे बढ़ जाती है, जिसमें ठठोली भी होती है, हंसी भी है और मजाक भी है और साथही तीखे ताने और व्यंग्य भी हैं। सूरदास ने भगवान को हर तरह की सुनाई हैं।

इन्हीं बातों मे सूर तुलसी से पृथक् हैं। तुलसी ने राम के मधुर कोमल रूपों का भी वर्णन किया है, किन्तु उतने विशिष्ट रूप मे नही जितने में कि उनके अन्य कर्तव्य-परायण, मर्यादापालक, लोकरंजक रूप और दुष्टदलन रूप प्रतिपालक स्वरूपो का। उन्होने राम के सम्पूर्ण जीवन का उपयुक्त वर्णन किया है, किन्तु सूर ने कृष्ण के विशेषतः बाललीला, प्रेम, विरह आदि का वर्णन किया है और उसमें वे तुलसी से बढ़ गये हैं। सूर में जो तल्लीनता आत्म-विस्मृति मिलती है वह तुलसी मे नही। रामचरितमानस मे कवि के सामने मर्यादा हर दम खड़ी रहती है, उसे उसका ज्ञान नहीं भूलता। भक्त और भगवान् के बीच का भेद नही मिटता। जहां कहीं मिटने भी लगता है. वहां तुरन्त कवि ध्यान करा देता है कि लीलाधाम पुरुषोत्तम हैं, लीला कर रहे हैं रस का प्रवाह भक्ति मे बदल जाता है। सूर ने स्वयं रस प्रवाह में डूब कर लिखा है, मर्यादा भी रखी है और वही प्रभाव पाठक पर पड़ता भी है। भक्ति व्यंग्य रहती है। तुलसी के राम मर्यादापालक हैं। जगत् मे आकर उन्हें प्रतिपल जगत को मर्यादा के पालन करने की चिन्ता रहती है। विपत्ति में, कष्ट मे, वे रोते भी है, पर धीरज से काम लेते हैं। ऐसा प्रतीत होता है जैसे सर्व शक्तिमान् मानवीय सीमाओं मे फंसा विवशता में फड़फड़ाता है। तुलसी ने लौकिक पारलौकिक दोनों रूपों के भव्य समन्वय रूप आदर्श जीवन का चित्र उपस्थित किया है। सूर के कृष्ण ऐसे नहीं थे। वे मर्यादा का उल्लंघन ही अधिक करते हैं। बालकपन को छोड कर वे कभी नही रोये। बुरी से बुरी मुसीबत में भी वे हंसते ही हैं। ऐसा लगता है जैसे वस्तुतः संसार का स्वामी अवतरित है और समस्त प्रकृति उसकी चेरी बनी उसका मुंह जोह रही है। समस्त जीव उनके प्रेम में मस्त दिखते हैं। वे योगी भी है, भोगी

भी है, योद्धा भी है और नर्तक भी; वे स्वतन्त्र हैं, जागतिक मर्यादाओं से ऊपर हैं परमात्मा के समान विरोधी गुणों के आश्रय-भूत। दूसरे, रामचरित मानस अवधी में है और सूरसागर व्रज में। यह भी इन दो प्रमुख भक्त कवियों की रचनाओं में भेद है। अन्यथा तो दोनों अपने क्षेत्र में महान् हैं, परस्पर क्या तुलना हो सकती है? एक उदाहरण

मैया मैं दधि नहिं खायो।
ख्याल परै ये सखा सबै मिलि मेरे मुख लपटायो।
देखि तुही छीके पर भाजन, ऊंचे धर लटकायो।
तूही निरखि मैं नन्हें कर अपने मैं कैसे करि पायो।
मुख दधि पोंछ कहत नंदनंदन दोना पीठ दुरायो॥

अष्ट छाप के अन्य कवियों का संक्षेप में परिचय निम्न है

नन्ददास ये सूरदास के समकालीन थे। चौरासी वैष्णवों की वार्ता के आधार पर सूरदास के भाई थे। इन्होंने रास-पंचाध्यायी, भ्रमरगीत, अनेकार्थ मंजरी, नाममाला आदि पुस्तकें लिखी हैं। इनके शब्दों के चुनाव की बहुत प्रशंसा है। एक कवि ने इस विशेषता के विषय में यह उक्ति कही थी सूरदास गढ़िया, नन्ददास जड़िया।" एक उदाहरण.

जौं उनके गुन होय वेद क्यों नेति बखानैं।
निर्गुन सगुन आतमा रुचि ऊपर सुख सानैं॥
वेद पुराननि खोजकै पायो कतहूँ न एक।
गुनही के गुन होहि तुम कहौ अकासहि टेक।
सुनो व्रजनागरी।

यह पद्य भ्रमरगीत का है। सूर के और नन्ददास के भ्रमर गीतों में और भागवत के वर्णन में अन्तर है। भागवत में, अन्त में गोपियां उद्धव के उपदेश के अनुसार काम करने को तैयार हो जाती हैं किन्तु नन्ददास की नहीं। सूर के भ्रमरगीत में भाव-प्रवणता अधिक है, गोपियों के उत्तर तर्क पर ही आश्रित नहीं अपितु अधिकतर या अनुभूति संगत होते हैं जिनमें उनके विरह की व्यथा फूटी पड़ती है। परन्तु नन्ददास की गोपियां उद्धव से ज्ञान

र भक्ति पर विवाद करती हैं. जिसका आधार तर्क पर अधिक आश्रित है, ससे थोडी शुष्कता आ जाती है ।

कुम्भन दास—ये परमानन्द के समकालीन और परम सन्तोषी महात्मा त के थे । अकबर के बुलाने पर ये सीकरी गये किन्तु वापिस आगये । पका यह पद्य प्रसिद्ध है.

सन्त को कहा सीकरी को काम ।
आवत जावत पहनियां टूटीं बिसरि गयो हरि नाम ॥

चतुर्भुज दास ये कुम्भन दास के पुत्र और बिठ्ठल जी के शिष्य थे । होने द्वादश यश, हितजू को मगल और भक्ति-प्रताप नामक तीन ग्रन्थ खे । एक उदाहरण:

जसोदा ! कहा कहौं हौं बात ।
तोरे सुत के करतब मोपै कहत कहै नही जात ॥

छीत स्वामी ये भी बिठ्ठल जी के शिष्य और मथुरा के पण्डा थे, नके बीरबल जैसे व्यक्ति यजमान थे । इनकी कविता का उदाहरण.

हे विधना तोसौं अंचर पसार मांगौं ।
जनम जनम दीजौ यहि ब्रजको बसवौ ॥

गोविन्द स्वामी ये भी बिठ्ठल जी के शिष्य और अच्छे गायक थे । र्द्धन पर्वत पर इनकी लगाई कदम्ब-बनी अब तक प्रसिद्ध है । दाहरण:

प्रात समय उठि जसुमति जननी
गिरधर सुत को उबटि न्हवावति
करि सिंगार बसन भूसन सजि
फूलनि रचि रचि पाग बनावति ॥

कृष्ण दास—ये शूद्र जाति के किन्तु बिठ्ठल जी के परम प्रिय शिष्य और के मदिर के प्रधान पुजारी थे । इन्होने जुगलमान चरित्र ग्रन्थ लिखा । के अन्य ग्रन्थ भ्रमरगीत और प्रेम तत्व निरूपण नामक अप्राप्य हैं । एक दाहरण:

मो मन गिरधर छवि पै अटक्यो ।

ललित त्रिभंगि चाल पै चलिकै चिबुक चारु गड़ि ठठनयी।

परमानन्द दास ये कनौजिया ब्राह्मण और वल्लभ जी के शिष्य थे। ये १६०६ के लग भग हुए। इनके फुटकल पद बड़े मधुर होते थे, जिन्हे वल्लभ जी बडी मस्ती में सुना करते थे। इनके एक फुटकल पद का अंश --

कहा करौ बैकुण्ठहि जाय ?

जहं नहि नन्द जहां न जसोदा, नहिं जहं गोपी ग्वाल न गाय।
जहं नहिं जल जमुना को निरमल और नहिं कदमन की छांय॥
परमानन्द प्रभु चतुर ग्वालिनी ब्रज रज तजि मेरी जाय बलाय।

अष्टछाप के अतिरिक्त इस धारा में अन्य भी अनेक उच्च कोटि के कृष्ण-भक्त कवि हुए, जिनमे से कुछ एक का विशेष विवरण इस प्रकार है।

मीरा बाई इनका काल १५७२ माना जाता है। ये उदयपुर के महाराणा भोजराज की पत्नी और जोधपुर बसाने वाले राव जोधा के वंश की पुत्री थी। इनका जन्म चोकरी नामक गांव मे हुआ था। विधवा होने के पश्चात् अनेक पारिवारिक क्लेशों से तंग आकर इन्होंने चित्तौड़ छोड़ दिया और भक्तवर राय दास से नाम की दीक्षा लेली। ये कृष्ण के रण-छोड रूप की उपासिका थीं।

इनकी कविता मे स्त्री सुलभ भावो की कोमलता, तन्मयता, और सर्वात्म-समर्पण की भावना फूटी पड़ती है। भक्ति की तन्मयता मे ये इतनी आत्मविस्मृत हो जाती थीं कि कही २ इनके भाव-वर्णन मे उत्कट शृंगार का आभास होने लगता है। ये कृष्ण का पति रूप मे उपासना करती थीं।

इनकी भाषा में राजस्थानी के शब्दों की प्रचुरता है, जो कि स्वयं उस प्रदेश की निवासिनी होने के कारण स्वाभाविक ही है। तो भी इनकी कविता के माधुर्य के प्रमाण स्वरूप आज भी इनके पद स्थान स्थान पर गा गाकर लोग प्रेम वा भक्ति की कलक का आनन्द लेते हैं। एक उदाहरण

मधु के मतवारे स्याम! खोलो प्यारे पलकें।
सीस मुकट लटा छुटी और छुटी अलकें॥
सुरनर मुनि द्वार ठाढ़े दरस हेतु कलके।
नासिका के मोती सोहै बीच लाल झलके॥

रसखान--१६६४ के लगभग हुए। ये दिल्ली के एक पठान सरदार थे। स्वभाव से अत्यन्त रसिक थे। एक बनिये के लड़के पर आसक्त हो गये थे। अन्त मे बिट्ठल जी के शिष्य होने पर इनकी वृत्ति शान्त हुई और इनका ऐन्द्रिय प्रेम स्वर्गीय आध्यात्मिक प्रेम में परिणत हो कृष्ण की भक्ति के रूप मे उतनी ही उद्दाम गति से बहा। ये मुसलमान होते हुए भी कृष्ण के सगुण रूप के अनन्य उपासक थे। भक्ति की यह गहनता इनकी कविता में सर्वत्र व्याप्त है। इन्होने ब्रज भाषा में अधिकतर सवैये या कवित्त लिखे, जो मधुरता मे अत्यन्त प्रसिद्ध हैं।

एक उदाहरण·

मानुष हौं तो वही रसखान बसौं संग गोकुल गांव के ग्वारन।
जौं पशु हौं तो कहा बस मेरो, चरौं नित नंद की धेनु मंझारन॥

हित हरिवंश--ये राधावल्लभ सम्प्रदाय के प्रवर्तक थे और वृन्दाबन मे उनकी मूर्ति स्थापित कर वही रहते थे। इनका जन्म १५५९ मे मथुरा के एक बादगांव नामक गांव मे ब्राह्मण परिवार में हुआ था। इनकी संस्कृत मे राम-सुधा-निधि और भाषा मे हित-चौरासी नामक पुस्तकें प्राप्त होती हैं। इनकी भाषा ब्रज है। इन्होने कुछ उद्भट फुटकल पद्य भी लिखे है।

हरिदास इनकी कविता वस्तुतः गाने के योग्य है। ये संगीत के पारदर्शी थे। तानसेन ने इनको अपना गुरु माना था। ये निम्बार्क सम्प्रदाय के वैष्णव परम भक्त कवि थे। किन्तु इनकी कविता के पाठ में उतना आनन्द नहीं जितना उसके गाने में है।

गदाधर भट्ट इनका काल १५८०-१६०० है। ये दक्षिणी ब्राह्मण थे और चैतन्य महाप्रभु के शिष्य थे। इनको गोस्वामी तुलसीदास जी ने भी उपदेश दिया था। ये संस्कृत के प्रकाण्ड पण्डित थे।

एक उदाहरण:

जयति श्री राधिके! सकल सुख साधिके!
तरुनि - मनि - नित्य - नवतन - किसोरी।
कृष्ण -तन -लीन मन, रूप की चातकी,
कृष्ण - मुख - हिम - किरण की चकोरी॥

सूरदास मदन मोहन—इनका रचना काल १५८०-१६०० है। ये ब्राह्मण और चैतन्य सम्प्रदाय के भक्त फक्कड कवि थे। ये अकबर के एक खजाञ्ची भी थे। एक बार इन्होंने खजाने के २२ हजार रुपये साधु सन्तो को खिला दिये और निम्न दोहा अकबर को लिखकर वन को चले गये।

तेरह लाख सडीले आये सब साधुन मिलि गटके,
सूरदास मदन मोहन आधी रातहि सटके।

अकबर ने इन्हे क्षमा कर दिया था, पर ये वैरागी ही रहे।

श्रीभट्ट ये निम्बार्क सम्प्रदाय के वैष्णव कवि १५९५ मे हुए। इन्होंने थोडा लिखा पर जो लिखा वह उत्तम कोटि का है। इनके सौ पद्यो का संग्रह युगल शतक नाम से मिलता है। उदाहरण.

ब्रज भूमि मोहनी मैं जानी।
मोहन कुंज, मोहन वृन्दावन, मोहन जमुना पानी।

व्यास जी—सनाढ्य ब्राह्मण कुल के, ओरछा वास्तव्य, हरिराम व्यास ओरछा नरेश के राजगुरु थे। हित हरिवंश जी से दीक्षा लेकर ये वृन्दावन मे ही रह गये थे। ओरछा नरेश लेने आये तो यह पद कहकर इन्होंने जाने से इन्कार कर दिया था कि

वृन्दावन के रूख हमारे मात पिता सुत बंध।
गुरु गोविन्द साधु गति मति सुख फल फूलन की गंध।
इनहिं पीठि दै अनत डीठी करै सो अधन मे अन्ध।
व्यास इनहिं छोडै और छुडावै ताको परियो कन्ध।

इन्होंने ज्ञान वैराग्य के अतिरिक्त कृष्ण-शृंगार और जगत् का भी अच्छा वर्णन किया है।

ध्रुवदास इनका रचना काल १६६०–१६७० माना जाता है। ये स्वप्न में हित हरिवंश द्वारा दीक्षित हुए थे। इन्होंने छोटे बड़े कुल मिलाकर ४० ग्रथ लिखे। मोहन मंजरी में से एक उदाहरण.

प्रेम बात कछु कही जाई। उलटी चाल तहां सब भाई,
प्रेम बात सुनि बौरो होई। तहां सयान रहै नहीं कोई॥

तन मन प्राण तिहीं छिन हारे, भली बुरी कुछ वै न विचारे,
ऐसो प्रेम उपजि है जबही हित ध्रुव बात बनैगी तबही ॥

दरबारी साहित्य

प्रश्न मुगल सम्राट् अकबर ने हिन्दी सहित्य के अभ्युत्थान मे क्या योग दिया ? वर्णन करिये।

उत्तर--जब से हिन्दी की अवतारणा साहित्य मे हुई अर्थात् वीर काल से लेकर, अकबर के ही काल में लोगोंको कुछ सांस लेनेकी शान्ति मिली थी। अतएव भारत के गत डेढ़ हजार साल के इतिहास मे अकबर-काल, क्या व्यवस्था, क्या शासन और क्या सहित्य-संगीत और कला सब की दृष्टि से स्वर्ण-काल माना जाता है। अब से पहिले भक्ति को जिन धाराओं या शाखाओं का वर्णन आया है वे सब लोक-साहित्य हैं, उनका उत्थान और परिवर्तन समाज को बदलती हुई संसार-दशा और मनोदशा के साथ ही होता रहा। यह साहित्य तुलसी के शब्दो में वस्तुत. स्वान्तः सुखाय तो है ही किंतु उससे कही अधिक लोकसुखायभी है। यह साहित्य लोकप्रतिनिधि महात्मा कवियों द्वारा जनता के हृदय को तार से अपना हृदय मिला कर आविर्भूत हुआ था। किंतु इसी समय भक्ति साहित्य के साथ २ अन्य प्रकार के साहित्य की भी नींव पड़ रहीथी जो अकबर और उसकी छत्र-छायाने वर्तमान अन्य राजाओं रजवाडो के दरबार में अविरत बन रहा था।

अकबर बहुत दूरदर्शी, उदार, सच्चा राजनीतिज्ञ, कुशल योद्धा और शासक था। वह समझताथा यहांमुस्लिम राज्य कायम रहने का एक ही मार्ग है-हिंदु मुसलमान आदि जातियां संकुचित जातीयता के या धर्म के भावों से ऊपर उठकर एक हिन्दुस्तानी जाति का निर्माण करें या कम से कम परस्पर भेदभाव न रखे। क्या शासन, क्या साहित्य, और क्या समझदार फकीरों के प्रचार में यही नीतिकाम कर रही थी। अकबर स्वयं एक भावुक कुशल काव्यकार था, कलाओं को समझता था। उसने संगीत को भी प्रोत्साहन दिया, तानसेन

जैसे रत्न रखे। हिन्दी के कवियों का आदर किया। उनको सम्मान दिया और अपने दरबार में स्थान दिया। इसके अतिरिक्त स्वयं भी लिखता था तथा औरों को भी प्रेरणा देता था अतएव उसके आश्रय में रहीम, रस खान गंग जैसे कवि हुए, जिन्होंने भक्ति के अतिरिक्त अन्य रसों में भी कविताएं कीं। किंतु प्रभाव उन पर भी भक्त कवियों का प्रत्यक्ष है। उन्होंने भी राधा कृष्ण के गीत बहुत गाये। इन्हीं के साथ २ एक अन्य प्रणाली भी चली जिस में संस्कृत ग्रन्थो के आधारपर काव्य के उपादनों का हिंदी पद्य में वर्णन कर उसके उदाहरण-स्वरूप कविताएं करना होता था। इस श्रेणी के अग्रणी केशवदास हुए। उनके बाद तो जैसे साहित्य में रीति ग्रन्थो की बाढ सी आगई। स्पष्ट ही यह सब फल अकबर की दूरदर्शी उदार और एक मात्र व्यवहार के योग्य नीति का ही था। उसी के आदर्श पर चलने वाले अन्य हिंदु मुसलमान राजा नवाब भी कला और साहित्य के शौक में पीछे नहीं रहे।

प्रश्न भक्ति काल मे वर्तमान दरबारी कवियो मे रहीम, गग, नरहरि और सेनापति का संक्षिप्त परिचय देते हुए अन्यों का भी संकेत रूप स आख्यान करो।

उत्तर अकबर के स्वयं इस ओर प्रयत्नशील होने पर उसके निकट सम्पर्क मे रहने वाले अन्य पदाधिकारियो पर भी इसका असर पड़े बिना नही रह सका। उनके बीरबल, टोडरमल, रहीम जैसे बड़े २ वजीर और सेनापति भी हिन्दी को कविता करने लगे थे। ऐसे लोगो मे रहीम का नाम सर्व प्रथम आता है।

रहीम इनका पूरा नाम अब्दुर्रहीम खान खाना था। इनका जन्म १६१० में लाहौर में हुआ था। इनके पिता अकबर के एक प्रसिद्ध सर्दार बैरमखा थे जिन्होंने प्रारंभ मे अकबर को गद्दी मिलने मे बड़ी सहायता दी थी। रहीम भी अकबर के सर्व प्रमुख मन्त्री, प्रधान सेनापति जैसे उच्च अत्यन्त विश्वस्त पदो पर रहे। अकबर की मृत्यु के पश्चात् जहांगीर ने लोगों के बहकावे और रहीम की स्वतंत्रताप्रिय प्रकृति के कारण नाराज होकर इन्हे बगावत मेजेल मेंडलवा दिया था। इनके अन्तिम दिन बड़ी मुफलिसी के थे ये मागी

दानी थे, अतः अपने पास विशेष संग्रह नहीं रखते थे। परिणाम स्वरूप इन्होंने अन्तिम मुसीबत के दिनों मे बड़ा कष्ट उठाया। इनके सब पुत्रों में कोई भी जीवित नहीं रहा था। १६८२ मे इन्होंने शरीर छोड़ा।

रहीम अकबर के नवरत्नों में से एक थे। ये बड़े उदार प्रेमी, दयावान, ज्ञानी, दानी, नीतिज्ञ, कुशल शासक योद्धा थे। इनके साथ ही ये अरबी फारसी संस्कृत हिन्दी आदि के प्रकाण्ड पण्डित थे। उनके इन सारे गुणों और विशेषताओं का हमे उनके सहित्य मे पूर्ण दर्शन होता है। उनका साहित्य इन उपर्युक्त तीनों भाषाओ में -मिलता है। फारसी मे उन्होंने बाबर चरित और कविताओ का संग्रह लिखे, सस्कृत मे खेट कौतुक नामक ज्योतिष ग्रन्थ लिखा और हिंदी में रहीम सत सई नामक सात सौ दोहों और सोरठों का संग्रह, बरवै छन्द, नायिका भेद, मदनाष्टक, रास पंचाध्यायी शृंगार-सोरठा आदि पुस्तकें लिखी। इनके शृंगार, नीति, कृष्ण वर्णन के पद्य बड़े चुभते हुए हैं। इनका तुलसी और मीरासे पत्र व्यवहारभी हुआथा। हिन्दी के अवधी और ब्रज दोनों रूपों पर आपको समान अधिकार था।

एक उदाहरण लीजियेः

बड़न सौं जान पहिचान कै रहीम कहा।
जो पै करतार ही न सुख देनहार है।
सीतहर सूरज सो नेह कियो याहि हेत।
ताहू पै कमल जारि डारत तुषार है॥ आदि।

गंग ये अकबर के दरबारी कवियों में एक प्रमुख स्थान रखते थे। जाति के भाट थे, वीर रस अधिक लिखते थे। वैसे सब चालू विषयो पर इन्होने लिखा है। उक्ति वैचित्र्य के लिए इनको विशेष ख्याति थी। ऐसी ही किसी उक्ति से इन्होंने किसी राजा या नवाब को नाराज कर दिया था जिसने इन्हें हाथी के पांवतले कुचलवा दिया था। रहीमने इनके द्वारा लिखित अपनी प्रशस्ति के छप्पय पर, कहते हैं, इन्हें ३६ लाख रुपया देदिया था।

उदाहरणार्थ वही छप्पय लीजिये.

चकित भंवर रहि गयो, गमन नहिं करत कमल बन।
अहिफन मनि नहिं लेत, तेज नही बहत पवन घनबन॥

हंस मानसर तज्यो चक्क चक्की न मिलै अति।
गहु सुन्दरि पतिनी पुरुष न चहैं, न करैं रति ॥
खलभलत शेष कवि गंग भन, अमित तेज रवि रथ खस्यो।
खानान खान वैरम सुवन जबहिं क्रोध करि तंग कस्यो ॥

सेनापति आपका जन्म १६४६ में अनूप शहर में एक कान्यकुब्ज ब्राह्मण परिवार में हुआ था। आप बड़े कुशल और भावुक कवि थे। आप की रचना प्रौढ़ और परिपक्व है और भाषा ललित और सुगठित, जिसमें स्थानर पर रस अलंकार आदि का भव्य सन्निवेश है। आप का प्रकृति-वर्णन विशेषतः षड्ऋतु वर्णन अत्यन्त सुन्दर है। उदाहरण

वृप को तरनि तेज सहसो करनि तपै।
ज्वालनि के जाल विकराल वर्षत हैं ॥
तचति धरनि जग झुरत झुरनि सीरी।
छांह को पकरि पंथी पंछी विरमत है ॥ आदि।

नरहरि—इनकी कविता पर प्रसन्न होकर अकबर ने इन्हें महापात्र की उपाधि दी थी। इन्होंने रुक्मिणी मंगल, छप्पय नीति तथा कवित्त-नीति आदि तीन ग्रन्थ लिखे थे। इनका जन्म १५६२ में और मरण १६६७ में हुआ था। कहते हैं, इनके निम्न छप्पय को सुन कर अकबर ने राज्य में गोवध बन्द करा दिया था।

अरिहु तिनु धरै ताहि नहि मारि सकै कोइ।
हम सन्तत तिनु चरहिं बचन उच्चरहि दीन होइ ॥
अमृतपय नित स्रवहिं बच्छ महि थम्भन जावहिं।
हिन्दुहि मधुर न देहिं कटुक तुरकनि न पियवहि ॥
कह कवि नरहरि अकबर सुनौ विनवति गौ जोरे करन।
अपराध कौन मोहिं मारियत मुएहु चाम सेवहु चरन ॥

बलभद्र मिश्र—(संवत् १६४२) वस्तुतः ये केशव के समकालीन और उनके साथही आगे आने वाले और रीतिमार्गी कवियों को मार्ग दिखाने वाले थे। इन्होंने काव्य के दोषों पर एक दूषण विचार ग्रन्थ लिखा। इन्होने नायिका के नख-शिख (अंगों का) का सुन्दर वर्णन किया है। ये नायिका के

अंगवर्णन को एक स्वतन्त्र विषय मानते थे जिस परिपाटी को भावी रीति-कार कवियों ने अपना लिया।

नरोत्तमदास ये सीतापुर के बाड़ी गांव के निवासी १६०२ में हुए थे। इनके सुदामाचरित का निम्न सवैया बहुत प्रसिद्ध है:

सीस पगा न झगा तन में, प्रभु जानै को आहि. बसै केहि ग्रामा।
धोती फटी सी लटी दुपटी और पांय उपानह को नहिं सामा ॥

आदि आदि।

बनारसीदास जन्म सं० १६४३ मे जौनपुर में हुआ। जाति के बनिये जौहरी थे। यौवन मे शृंगार की कविता लिखी। पीछे वह नदी मे बहादी और ज्ञान, नीति, धर्म आदि पर लिखने लगे। इन्होने बनारसी विलास, नाटक समयसार, मोक्षपदी, ध्रुववंदना आदि कई ग्रन्थ लिखे।

प्रश्न दर्बारों के प्रभाव मे उत्पन्न होने वाले इस अकबरकालीन साहित्य का हिन्दी में क्या स्थान है?

उत्तर अकबर काल का यह साहित्य वस्तुत: रीति-काल का आदि रूप था। इसी के आधार पर आगे चल कर रीति ग्रन्थों की परिपाटी चल पड़ी। भक्ति की प्रेम की भावना यहां लौकिक शृंगार मे बदल रही थी। राधा कृष्ण के नखशिख के साथ साथ साधारण नायिका के नखशिख के वर्णन का और कविताके साथ साथ कविताकी रीति और गुण दोषों पर भी विवेचन करने का मार्ग इसी काल में बन रहा था। यही साहित्य वस्तुत. आगे रीति-काल में रीति ग्रन्थों और नायिका के नखशिख और भेद-वर्णन के रूप मे विकसित हुआ। यह साहित्य वस्तुत भक्ति-काल और रीति काल के बीच की कड़ी है।

उत्तर मध्यकाल या रीतिकाल

प्रश्न रीतिकाल की राजनैतिक और सामाजिक दशा का संक्षेप में वर्णन करो।

उत्तर वीरगाथा काल के अन्त मे भारतवर्ष के प्रतिरोध और संघर्ष का प्राय अन्त हो गया था। मुगल शासन अच्छी तरह दृढ़ हो चुका था। हिन्दु शासक मुगल प्रभुत्व को स्वीकार करके ऐश मे अपने दिल को भुलाने मे आसक्त थे। तरह २ के रस राग रंग मे समय बीतता था। कवि लोग भी उनके मनोरंजन का साधन बने हुए थे। अधिकतर देश-भाग में ऐसी ही कृत्रिम शान्ति का समय था। हिन्दु मुसलमानो को एक साथ रहते अब कई सौ साल हो चुके थे। विरोध की अब वह दशा नही रही थी। जनता भी अपने शासकों का अनुकरण कर विषयानन्द मे ही आसक्त थी। वीरता या संघर्ष का समय नहीं था। संघर्ष का नाम देश भक्ति के आदर्श मे या तो महाराणा प्रताप आदि राजपूतों ने रखा हुआ था और या औरंगजेब आदि मुगल शासकों की संकुचित साम्प्रदायिक और अत्याचार-मूलक नीति के परिणाम-स्वरूप राणा राजसिंह, शिवाजी, छत्रसाल आदि ने इस (रीति) काल में आकर विद्रोह का झण्डा खड़ा किया। नहीं तो संघर्ष का प्रधानतया अन्त हो चुका था। समाज अपने अनेक धर्म बन्धनों, प्राचीन परम्पराओं और रूढ़ियों में और अनेक झूठे सच्चे मत मतान्तरों में भूला हुआ इन्द्रियलिप्सा में अधिक रत था। हिन्दु जाति दिनों दिन छीज रही थी। छूआछूत, संकुचितता, झूठे आडम्बरों का समाज में बोल बाला था। भक्ति का प्रवाह सूख चुका था और अब उसका स्थान लौकिक विषय-लिप्सा ने ले लिया था। ऐसे ऐशपरस्ती के जमाने में राजाओं के आश्रित कवियों ने भी समय के स्वर मे स्वर मिलाना आरम्भ कर दिया। वे लोग राजाओं के मनोरंजन के अनेक साधनों में स्वयं भी एक हो गये।

प्रश्न रीतिकाल के साहित्य का साधारण परिचय दो।

उत्तर १७०० से १६०० तक का यह काल हिन्दी साहित्य मे रस रीति अलंकार आदि काव्य के उपादानो के विवेचन का काल है। इस काल

में आकर आध्यात्मिकता या भक्ति का काल प्रायः समाप्त हो चुका था। केवल उसका नाम मात्र का व्यवहार रह गया था। राधा कृष्ण का अब भी वर्णन होता था, उनकी रास का, जमुना क्रीड़ा का और संयोग वियोग का अब भी जिक्र था। पर अब इस सारे वर्णन का आधार शुद्ध मानसिक भावना या भक्ति नहीं था, प्रत्युत सांसारिक विषय लोलुपता था। राग रंग में मस्त राजा लोगों को खुश करके उनसे इनाम पाने के लोभ में कवि लोग राधा-कृष्ण का नाम लेकर उनकी ओट में श्रृंगार का वीभत्स रसाभास की कोटि तक का अश्लील वर्णन करने तक में नहीं चूकते थे। आगे इतना भी छूट गया। राधाकृष्ण का नाम कभी भूले भटके कोई कवि ले लेता था नहीं तो साधारण लौकिक नायक नायिका के ही नख-शिख आदि अंगों के सौन्दर्य का वर्णन मात्र रह गया था। नायिका के अंगों का कामोत्तेजक वर्णन कर सीने पर हाथ रखकर हाय हाय करना ही कवि का पुरुषार्थ रह गया था। नायिका के अंगों का वर्णन यद्यपि पहिले भी होता था, किन्तु अब आकर नख-शिख वर्णन रस का आलम्बन रूप न रहकर वर्णन का एक स्वतन्त्र विषय बन गया था। आंख, नाक, कान, मुंह, अधर आदि पर अपना समस्त कवित्व समाप्त कर कवि अपने को कृत-कृत्य समझता था। इस नख शिख वर्णन की परिपाटी का श्री गणेश अकबर काल में बलभद्र मिश्र से हो जाता है। इसी नख-शिख वर्णन वाली श्रेणी के अतिरिक्त एक और कवियों की श्रेणी भी थी जिन्हें हम आचार्य और कवि दोनों कह सकते हैं। ये लोग संस्कृत ग्रन्थों के आधार पर हिन्दी पद्यों में रस रीति अलंकार आदि के ग्रन्थ लिखते थे और उनके (रसादि के) लक्षण लिखकर उनके उदाहरण के रूपमें फिर आप कविता करके उसमें जोड़ते थे। अर्थात् किसी रस का लक्षण लिखा और फिर नये २ उसके उदाहरण बनाकर लिखने प्रारम्भ कर दिये। बस यही परिपाटी थी। ऐसे लोगों के अगुआ आचार्य केशवदास थे। इनकी कविताएं अधिकतर रसादि के संकुचित बन्धनों में बंधी उतनी रसीली नहीं हो पाई, जितनी कि उनमें उनकी बाह्य भाषा या अलंकार आदि द्वारा की हुई चमत्कृति है। इनमें बहुत से वस्तुतः आचार्य थे, कविता उन्होंने प्रणाली के निर्वाह के लिए हठात्कृत

की और बहुत से ऐसे भी थे जो वस्तुतः कवि थे, पर जिन्हें परिपाटी के लिए आचार्य बनना पड़ा। स्पष्ट तो यह है कि इनमें न कोई पूरा कवि ही कसौटी पर उतरा और न आचार्य ही। आचार्य वे सफल इसलिए नहीं हो सके कि किसी काव्य की वस्तु का सांगोपांग विवेचन उन्होंने नहीं किया। करना भी चाहते तो भी नहीं कर सकते थे। कारण, एक तो उनमें से अधिकांश का इन शास्त्रों का ज्ञान अधूरा था और जिनका ज्ञान पूरा था भी, उनके सामने भाषा की कठिनाई थी। भाषा एक तो इतनी परिमार्जित और समर्थ नहीं थी कि ऐसे सूक्ष्म विषयों का विवेचन हो सके। गद्य अविकसित दशा में थी और पद्य में अच्छा बुरा लक्षण तो लिखा जा सकता था पर किसी वस्तु का विवेचन संभव नहीं था। इन आचार्यों को कविता में पूरी सफलता इसलिए नहीं मिली कि उन्हें अपने लक्षणों के बन्धन में रहकर उदाहरण लिखने पड़ते थे, जिसमें उनकी स्वतन्त्र प्रतिभा लुप्त हो जाती थी। किन्तु फिर भी उन लोगों का महत्त्व कम नहीं। उन्होंने हिन्दी की सामर्थ्य और उसका क्षेत्र बढ़ाया। इनके अतिरिक्त इस काल में और भी कवि हुए, जिन्होंने न लक्षण ग्रन्थ लिखे और न उनके उदाहरण ही। इन्होंने लौकिक विषयों पर और भक्ति ज्ञान पर भी मुक्तक रचनाएं कीं। ये लोग भी यद्यपि अपने समय के काव्य नियमों के प्रभाव से अछूते नहीं थे, इन्होंने भी सब कुछ उन्हीं नियमों के आधीन होकर लिखा, किन्तु तो भी इनकी स्वतन्त्र प्रतिभा का पर्याप्त विकास हुआ जो कि आचार्य कवियों के लिए सभव नहीं था। इस काल की भाषा ब्रज भाषा रही जो इन कुशल कलाकारों के हाथों में पडकर खूब कट छंट कर मंज गई। एक और विशेषता यह है कि इस काल में (रीतिकाल में) हमें वीर रस की छोटी सी धारा फिर बहती मिलती है। संघर्ष यद्यपि अकबर काल में भी राणा प्रताप ने जीवित रखा था, किन्तु इस काल में राणा राजसिंह, दुर्गादास, छत्रसाल जैसे राजपूत और शिवाजी जैसे महाराष्ट्रीय वीरों का आश्रय पाकर वीर रस फिर प्रत्यक्ष में आया और हमें भूषण, लाल जैसे वीर रस के कवियों के दर्शन हुए। आधुनिक काल १९०० तक साहित्य की यही दशा चलती रही।

प्रश्न रीति-ग्रन्थकारों में मुख्य २ का समुचित परिचय दो।

आचार्य केशवदास आचार्य कोटि के कवियों में आचार्य केशव सबसे पहिले आते हैं। इनका काल १६१२-१६७४ माना जाता है। ये ओड़छा निवासी और ओड़छा नरेश इन्द्रजीत के आश्रित थे।

केशवदास संस्कृत के उच्चकोटि के विद्वान् थे। अतएव रसिकता और संस्कृत की परिपाटी पर काव्य के उपादानों अलंकार आदि का विवेचन करना स्वाभाविक गुण थे। संस्कृत के लक्षणकारों में भी वे दण्डी और रुय्यक के अनुयायी थे और अलंकार को ही काव्य का सर्वस्वभूत आत्मा मानते थे। इनके कवि प्रिया, रसिक-प्रिया आदि अलंकार ग्रन्थ और रामचन्द्रिका प्रबन्ध काव्य तीन ग्रन्थ मिलते हैं।

आप वस्तुतः आचार्य थे, कवि पीछे थे। आपने रस अलंकार आदि का सर्वप्रथम वर्णन किया और उनके उदाहरण रूप कविता लिखी। इनके अनुसरण पर ही फिर आगे के आचार्यों ने ग्रन्थ रचना की। कवित्व की दृष्टि से इनकी कविता साधारण कोटि की है। उसमें भावतत्व, उसकी गहनता और उसकी अनुभूति अत्यल्प है। भावों में अस्वाभाविकता, रसों में भङ्गता, वर्णनों में कृत्रिमता और अनुचितता आदि आ गई हैं। हां काव्य के बाह्य सौन्दर्य अलंकार आदि के चमत्कार की दृष्टि से इनकी कविता ऊंची है। संस्कृत में प्रचलित भिन्न भिन्न वर्णन शैलियों को इन्होंने अपनाया है। काव्य के उपादानों के निर्वाह के प्रयत्न में ये भाव को अनाथ छोड़ जाते हैं। इन्होंने राम चन्द्रिका में राम का आद्योपान्त जीवन वर्णन किया है। यह प्रबन्धकाव्य है, जिसमें इन्होंने एक एक अक्षर के छन्दों से लेकर प्रायः समस्त चालू छन्दों का प्रयोग किया है। रामकाव्य होने के कारण यद्यपि इन्हें रामभक्त कवियों में स्थान मिलना चाहिए था, किन्तु इसलिए नहीं मिला कि एक तो इनके काव्य का मूल भक्ति नहीं है; दूसरे, उसमें काव्य होते हुए भी केशव आचार्य रूप में ही अधिक दिखते हैं। कवित्व की दृष्टि से उसमें अनेकत्र दोष आ गये हैं। उनके अन्य साहित्य को भी देखते हुए इसलिए इनका रीति कवियों में ही स्थान निर्धारित हुआ। इनकी कविता में अलंकार

आदि अन्य चमत्कार ही विशेष हैं, व विचित्र अत्यल्प है। स्थान स्थान पर इन्होंने कादम्बरी आदि संस्कृत काव्यों की नकल भी की है।

इनकी भाषा ब्रजभाषा है जिसमें संस्कृत मिश्रण का बाहुल्य है, जिसके कारण उसमें श्लेष आदि अलंकार अच्छे बने हैं।

उदाहरण:

पुंज कुंजर शुभ्र स्यन्दन सोभि जै सुठि सूर ।
ठेलि ठेलि चले गिरी सनि पलि सोनत पूर ॥
ग्राह तुङ्ग तुरंग कच्छप चाक चर्म विलास ।
चक्क से रथ चक्र परत वृद्ध गृद्ध मराल ॥ आदि आदि।

चिन्तामणि त्रिपाठी--ये कविवर भूषण के बड़े भाई थे। ये कान्यकुब्ज ब्राह्मण और इनका कविता काल १७७० के लगभग माना जाता है। आचार्यों मे दूसरा नम्बर केशव के पश्चात् इनका आता है। इन्होंने भी उसी ढंग मे अर्थात् प्रथम काव्य अलंकार आदि के लक्षण लिख कर फिर उदाहरण स्वरूप कविता लिखी हैं। किन्तु केशवदास से इनका मत भिन्न था। केशव अलंकार को काव्य की आत्मा मानते थे, किन्तु ये मम्मट आदि काव्य की आत्मा रस को मानने वाले आचार्यों के अनुयायी थे। अतएव इनकी कविता केशव से अधिक रसमयी बनी है। भाषा इनकी भी ब्रज ही थी।

इन्होंने काव्य विवेक, कविकुल कल्पतरु, और काव्य-प्रकाश नामक काव्य के लक्षण ग्रन्थों के अतिरिक्त छन्दोविचार नामक एक छन्दों का ग्रन्थ भी लिखा है।

एक उदाहरण

इक आजु मैं कुन्दन वेलि लखी मनि मन्दिर की रुचि वृन्द भरैं ।
करविन्द को पल्लव इन्दुतही अरविन्द मैं मकरंद भरैं ॥

मतिराम--ये भूषण के छोटे भाई थे और तिकवांपुर ग्राम में १६७४ में उत्पन्न हुए थे। ये महाराज भावसिंह बूंदी नरेश के बहुत दिन आश्रित रहे। इन्होंने ललित ललाम, साहित्यसार, रसराज, लक्षण- शृङ्गार आदि लक्षण-

ग्रन्थ, छन्दसार नामक पिंगल-ग्रन्थ तथा मतिराम-सतसई नामक एक सात-सौ दोहों का संग्रह ग्रन्थ लिखे।

इनकी कविता में आचार्यत्व और कवित्व दोनों में कवित्व की मात्रा अधिक है। इनकी रसात्मकता और भाव प्रवणता पर्याप्त है, जिसमें अलंकार आदि का समुचित सन्निवेश है। भाषा व्रज है।

एक उदाहरण

कुन्दन को रंग फीको लगै झलकै अति अंगनि चारु गोराई।
आंखिन में अलसानि चितौनी मैं मंजु विलासन की सरसाई॥
को बिनु मोल बिकात नहीं मतिराम लहे मुसकानि—मिठाई।
ज्यों ज्यों निहारिये नेरे ह्वै नैननि त्यों त्यों खरी निकरेसी निकाई॥

देव इनका काल १७३०- १८२४ माना जाता है। ये इटावा के रहने वाले और सनाढ्य ब्राह्मण थे। ये बचपन से कवि थे और सोलह वर्ष की अवस्था में आजमशाह की प्रशंसा में कविता बनाई थी। किन्तु इन्हें किसी राजा का आश्रय नहीं मिला था और अधिकतर जीवन इनका देश-देशान्तरों में घूमने में ही बीता था।

इन्होंने ७२ ग्रन्थ लिखे बताये जाते हैं जो समस्त नहीं मिलते। जो मिलते हैं उनमें काव्य रसायन, रसविलास, सुखसागर आदि लक्षण-ग्रन्थ और देवमाया प्रपंच, जातिविलास, प्रेमचन्द्रिका, भावविलास, भवानीविलास, कुशलविलास आदि काव्य ग्रन्थ हैं। इनमें मायाप्रपंच नामक ग्रन्थ नाटक है।

देव आचार्यत्व की दृष्टि से केशव से कुछ ही कम ठहरते हैं। परिमाण में तो आप की कविता सर्वाधिक है ही विषयों और वर्णनों की दृष्टि से भी आप की कविता बहुत विस्तृत है। ये श्रृंगार के प्रसिद्ध कवि थे। इन्होंने नायिका वर्णन बहुत अच्छा लिखा है, जिसमें विभिन्न देशों की अनेक अवस्थाओं की स्त्रियोंका बड़ा सुन्दर वर्णन किया है। आपकी कविता चुभती हुई चुटीली और सरस होती थी। आपने श्रृंगार के अतिरिक्त ज्ञान वैराग्य पर भी लिखा है। आपकी उक्ति विचित्र और मार्मिक है। भाषा आपकी व्रज है, जिस पर आप को पूरा अधिकार है। भाव क्षेत्र विस्तृत होने के कारण इनकी भाषा मे भी

सामर्थ्य और व्यञ्जकता अधिक है। इनका शब्द भण्डार विषयों के साथ ही बहुत विस्तृत है। आपने देश-देशान्तरों में घूमते हुए अनेक वस्तुओं का, विशेषकर विभिन्न देशों की स्त्रियों के नख-शिख का स्वभाव का बहुत सूक्ष्म वर्णन किया है। एक नमूना लीजिये

सांसन ही में समीर गयो अरु आंसुन ही सब नीर गयो ढरि।
तेज गयो गुन लै अपनो अरु भूमि गई तनु तनुता करि॥
देव जियै विलिवेई की आशा कै आसहु पास अकास रह्यो भरि।
जा दिन तें मुख फेरि हरै हंसि हेरि हियो जु लियो हरिजू हरि॥

भूषण ये चिन्तामणि और मतिराम के भाई थे। इनका जन्म १६७० मे हुआ था। अपने दोनों भाइयों के विपरीत ये वीर रस के कवि थे। सोलंकी राजा रुद्र ने इन्हें कवि भूषण की उपाधि दी थी। यह उपाधि इनकी इतनी प्रसिद्ध हुई कि ये इसी नाम से प्रसिद्ध हो गए। इन्होंने अनेक राजाओं के दर्बारों की सैर देखी और वहां थोड़ी थोड़ी देर ठहरे भी, किन्तु इन्हें अपने मनोनुकूल आश्रयदाता, जिस पर ये हृदय से लट्टू थे, शिवाजी ही मिले थे जिनके पास ये अन्त तक रहे। इन्होंने केवल दो ही राजाओं की हृदय से प्रशंसा की है एक पन्नानरेश छत्रसाल की और दूसरे महाराज शिवाजी की। शिवाजी इनकी कविता पर इतने मोहित थे कि इन्होंने प्रथम भेंट ही में इनकी आगे लिखी कविता सुनकर इन्हे लाखों रुपया दे डाला था। क्या घर में और क्या आक्रमणों में और युद्धों मे ये सर्वदा शिवाजी के साथ रहते थे।

भूषण एक मात्र वीर रस सफलता से लिखते थे। अपने समस्त कविता-काल में, कहते हैं, इन्होंने शृंगार रस का केवल छन्द बनाया था। उसमें भी कामदेव की फौज की चढ़ाई का वर्णन कर इन्होंने युद्ध का सा रंग ला दिया है। इन्होंने अपने समय की प्रचलित परिपाटी के आधार पर शिवराज-भूषण लिखा जिसमें दोहों में प्रथम अलंकारों के लक्षण लिखे गये हैं और फिर उनके उदाहरण रूप में छन्द बनाये गए हैं। कहना नहीं होगा इन सभी छन्दों के नायक शिवाजी हैं और छन्दों मे उनके विविध युद्धों और तेज प्रताप का वर्णन है। वीर रस का प्रवाह बहता है। शिवाजी को ही

स्तुति के उन्होंने बावन छन्द स्वतंत्र प्रणाली में भी लिखे जिनका संग्रह शिवा बावनी के नाम से प्रसिद्ध है। इसी प्रकार महाराज छत्रसाल को प्रशंसा में लिखे उनके १० छन्दों का संग्रह छत्रसाल दशक नाम से प्राप्त होता है। बस इसके अतिरिक्त उनका और कोई साहित्य नहीं मिलता।

समय-प्रवाह के प्रतिकूल भूषण ने साहित्य में वीरता का प्रवाह बहाया था। उनका स्वभाव-सिद्ध रस यही था। वैसे ही वीर देश-भक्त छत्रसाल और शिवाजी जैसे उन्हें अपने वर्णन के नायक मिल गये थे। सोने में सुगंध का योग हो गया था। उन्होंने अपने नायकों पर हृदयतल से मुग्ध होकर उनकी प्रशंसा की है, जिसके कि वे उपयुक्त पात्र थे। उनके वर्णनों में अधिकांश में उन्होंने अत्युक्ति या अतिशयोक्ति से काम लिया है, पर उसका आधार खुशामद या फरमायश नहीं था, बल्कि वस्तुतः उनके प्रति उनका आन्तरिक स्वाभाविक प्रेम और श्रद्धा ही थी। उन्होंने जो कुछ कहा वह वस्तुतः स्वान्तः प्रेरणा से कहा, इनाम पाने के लालच से नहो। अधिकांश समकालीन हिन्दू जनता के शिवाजी के प्रति ऐसे ही श्रद्धा और अलौकिकता के भाव थे, जैसे कि भूषण ने अलंकार की रुचिर पुट देकर कहे। शिवाजी और भूषण के भाव और विचार आमूल एक थे। इसी लिए कहा जाता है कि एक ही देश-भक्त वीर आत्मा ने कार्य-क्षेत्र में शिवाजी के रूप में, और साहित्य-क्षेत्र मे भूषण के रूप में अपना विकास पाया था। यह बात असत्य नहीं।

भूषण के वर्णन विशद और सजीव होते हैं। उन्होंने शिवाजी की धाक, आक्रमण, युद्ध और वीर-कृत्यों से लेकर शत्रुओं के हर्मों की भगदड़ का, वीरानी का अनुपम वर्णन किया है। अलंकारों में उपमा, रूपक, अत्युक्ति, अतिशयोक्ति श्लेष, उत्प्रेक्षा, विरोध आदि शब्दालंकारों मे यमक, लाट, अनुप्रास, आदि का सुन्दर प्रयोग किया है। छन्द वीर रस के उपयुक्त, कवित्त, छप्पय, रोला, उल्लाला दण्डक आदि का उपयोग किया है।

भूषण को भाषा ब्रज है, उसमे बुन्देलखडी अरबी फारसी संस्कृत आदि के शब्दों का मिश्रण है। उसके बारे में एक मुख्य आक्षेप यह किया जाता

है कि भूषण ने उसे बुरी तरह तोड़ मरोड़ कर अपने छन्दों में फिट बिठाया है। कुछ हद तक यह कहना ठीक भी है। क्योंकि भूषण ने ऐसा किया है और इसी कारण उसकी कविता बहुत दुरूह हो गई है। इन्होंने शब्दों को अवैयाकरणी की भांति तोड़ा मरोड़ा है। किन्तु इन्होंने यह सब अपनी कविता के वीर रस की अभिवृद्धि के लिए किया है। इस दोष ने जहां आपकी भाषा को कुछ अंशों में विकृत किया है तो उसमें वह गठन, वह प्रवाह, वह जोर भी भर दिया है कि भूषण जब पढ़ते थे तो वीर म्यान से तलवारें बाहर खींच लेते थे। उन्होंने अनुप्रास के लिए, भाषा को वीर और रौद्र रस के उपयुक्त कर्कश बनाने, उसमें प्रवाह और तुक उत्पन्न करने और उसमें दुर्द्धर्ष शक्ति उत्पन्न करने के लिए ऐसा किया है। इसके लिए उन्होंने सभी प्रचलित भाषाओं के शब्दों से सहायता ली है। ध्यान रहे रीति ग्रन्थकारों में भूषण ही ऐसे कवि हैं जिन्होंने वीर रस में इतने परिमाण में लिखा है। नहीं तो वीर गाथा काल के पश्चात् इतने वृहत् परिमाण में किसी कवि ने नहीं लिखा। और तो और महाराणा प्रताप जैसे देश-भक्त योद्धा का कोई रासो नहीं लिखा गया।

भूषण की शिवा बावनी का एक उदाहरण:

इन्द्र जिमि जम्भ पर बाडव सुअम्भ पर,
रावण सदंभ पर रघुकुल राज है।
पौन वारिवाह पर संभु रति नाह पर,
ज्यों सहस्रबाहु पर राम द्विज राज हैं॥
दावा द्रुम दंड पर चीता मृग झुंड पर,
भूषण वितुण्ड पर जैसे मृगराज हैं।
तेज तम अंस पर कान्ह जिमि कंस पर,
त्यों मलेच्छ वंश पर सेर सिवराज हैं॥

भिखारीदास इनका साहित्य काल १७८९–१८०७ तक माना जाता है। ये जाति के कायस्थ, प्रतापगढ़ के रहने वाले और प्रतापगढ़ के सोमवंशी पृथ्वीपति सिंह के भाई हिन्दुपतिसिंह के आश्रित थे।

इन्होंने काव्य के उपादानों—रस, रीति, अलंकार, दोष शब्द की शक्तियों आदि समस्त विषयों पर विस्तारशः विवेचन किया है। साथ ही छन्द और भाषा के विषय मे भी आपने ग्रन्थ रचना की है। इनके शृंगार-निर्णय नामक ग्रन्थ में शृंगार का विवेचन बहुत अच्छा माना जाता है। इसके अतिरिक्त इनके छन्द प्रकाश, काव्य-निर्णय, रस सारांश, छन्दोर्णव पिंगल, शतरंज शतिका नाम प्रकाश, अमर प्रकाश आदि ग्रन्थ मिलते है।

अपनी कविता मे ये अपना नाम 'दास' लिखते थे। यही नाम इनका साहित्य में प्रसिद्ध भी है।

भाषा आपकी शुद्ध परिमार्जित संस्कृत-गर्भित ब्रज भाषा है। उदाहरण—

कढ़ि कै निसंक पैठि जाति झुंड झुंडन में,
लोकन को देखि दास आनन्द पगति है।
दौरि दौरि जहां तहा लाल करि डारति है,
अंक लागि कंठ लगिबे को उमगति है॥
चमक झमकवारी ठमक जमक वारी,
रमक तमक वारी जाहिर जगति है।
राम असि रावरे की रन मे नरन में,
निलज बनिता सी होरि खेलन लगति है॥

पद्माकर भट्ट अपने समय के ये सबसे प्रसिद्ध और महत्वशाली कवि हैं। इन्होंने राजाओ की प्रशस्तियों में और प्रचलित परिपाटी पर लक्षण-ग्रन्थ लिखने के साथ २ अन्य स्वतन्त्र विषयों पर भी कविता की है, जिसमे से अधिकांश शृंगार वर्णन अपने काल मे आदर्श माना जाता था। इनकी रस अलंकार गुण रीति आदि की योजना, प्रकृति वर्णन नायिका वर्णन, षड्ऋतु वर्णन आदि सजीव और गहरी अनुभूति को लिए हुए हैं। वैसा ही आपका भाषा पर भी अधिकार है जो पद्माकर जैसे कुशल और समर्थ कलाकार के हाथों मे पड़ कर, विषयानुरूप या रसानुरूप कोमल कठोर आदि कवि के इष्ट-रूपो को धारण करती, स्वाभाविक प्रवाह मे नाचती, मचलती, अकड़ती और गरजती हुई चलती है।

ये बांदा निवासी थे और १८१०-१८६० के काल में हुए थे। रीति-ग्रंथ-कार परम्परा में इनके बाद में केवल प्रतापसाहि का ही नाम आता है, जिनकी रचनाएं महत्वशाली हैं। नहीं तो, इस परम्परा के अन्तिम कवि या आचार्य पद्माकर ही ठहरते हैं जिनकी रचनाओं में इस काल की काव्यकला अपने चरम विकास में पहुंची हुई है।

इन्होंने अवध के तत्कालीन प्रसिद्ध सेनापति नवाब हिम्मत बहादुर की प्रशंसा में हिम्मत बहादुर विरुदावलि लिखी और जयपुराधीश जगतसिंह के आश्रय में रह कर उनकी प्रशस्त में जगद् विनोद और पद्माभरण नामक अलंकार ग्रन्थ लिखे। इनके अतिरिक्त प्रबोध पचासा और गंगा लहरी नामक ज्ञान और भक्ति के ग्रन्थ भी लिखे। किन्तु आपकी प्रशंसा वस्तुतः शृंगार के कारण है जिसके ये सिद्ध कवि थे। एक उदाहरण:

> फूलन मे केलिन मैं, कछारन मे कुंजन में,
> क्यारिन में कलिन कलीन किलकत हैं,
> कहै पद्माकर परागन में पानहूँ मे,
> पानन में पीक में पलासन पगत हैं।
> द्वार में दिशान में दुनी में देश देशन में,
> देखो दीप दीपन में दीपत दिगन्त हैं।

आदि आदि

प्रतापसाहि- इस रीति-परम्परा के ये सबसे अन्तिम कवि माने जाते हैं। ये उच्च कोटि के विद्वान् आचार्य अत्यन्त समर्थ रस-सिद्ध कवि थे, जिनका रस रीति अलकार भावव्यंजना और भाषा पर पूरा अधिकार था और जो अपने आचार्यत्व और कवित्व के आधार पर केशव, दास, देव, मतिराम, पद्माकर आदि से किसी अंश में भी कम नहीं ठहरते। इनके व्यंग्यार्थ कौमुदी और काव्य विलास नामक दो आचार्य ग्रन्थ बहुत प्रसिद्ध हैं। इनके अतिरिक्त इन्होंने रत्नचन्द्रिका, जुगल नख सिख, अलंकार चिन्तामणि शृंगार-मंजरी, शृंगार शिरोमणि, रसराज की टीका, बलभद्र नख शिख की टीका, जयसिंह प्रकाश आदि ग्रन्थ लिखे।

ये चरखारी के राजा विक्रमसाहि के आश्रित थे। इनका काल १८८०—१९०० माना जाता है।

उदाहरण –

तड़पे तड़िता चहुं ओरन ते छिति छाई समीरन की लहरैं।
मदमाते महा गिरिशृंगन पै गन मंजु मयूरन के कहरैं॥
इनकी करनी बरनी न परै मगरूर गुमानन सों गहरैं।
धन ये नभ मण्डल में गहरैं घहरैं कहूँ जाय कहूँ ठहरैं॥

प्रश्न इस परिपाटी (रीति ग्रन्थों की) में हुए अन्य कवियों का संक्षेपतः परिचय दो।

उत्तर इस काल में लक्षण ग्रन्थों की परिपाटी में कविता करने वाले जो अन्य कवि हुए उनका संकेत मूलक परिचय निम्न लिखित है। विशेष के लिए अन्य ग्रन्थ देखने चाहियें।

कुलपति मिश्र इनका रचना काल १७२४–१७४३, जाति चौबे ब्राह्मण, निवास आगरा और इनके ग्रन्थ रस-रहस्य, मुक्ति तरंगणी, नख शिख, संग्रहसार गुण, रस रहस्य आदि हैं। रस-रहस्य सर्व प्रमुख है। ये उद्भट विद्वान् आचार्य और कुशल समर्थ काव्यकार थे। उदाहरणः

ऐलिय कुंज बनी छबि पुंज रहे अलि गुंजत यों सुख साजै।
नैन विलास हिये बन माल बिलोकत रूप सुधा भरि लीजै॥ आदि २।

श्रीपति इनका समय लगभग १७७७, जाति कनौजिया ब्राह्मण, निवासस्थान कालपी, और ग्रन्थ, काव्य सरोज, कवि कल्पद्रुम, रस सागर, अनुप्रास विनोद, विक्रम विलास, सरोज कलिका, अलंकार गंगा आदि प्रसिद्ध हैं। ये अच्छे विद्वान् आचार्य और प्रवीण कवि माने जाते थे। उदाहरण –

जल भरे झूमैं मानो भूमैं परसत आय,
दसहू दिसान घूमैं दामिनी लए लए॥
धूरिधार धूमरे से धूम से धुंधारे कारे।
धुरवान धारे धावैं छवि सों छए छए॥ आदि आदि।

सुखदेव मिश्र —काल १७२०–१७६०, जाति ब्राह्मण, निवास दौलतपुर (बरेली) और इनके ग्रन्थ वृत्त विचार, छन्द विचार, फाजलअली प्रकाश,

रसार्णव, शृंगारलता और अध्यात्म प्रकाश हैं। आपके शृंगार के दोहे अधिक प्रसिद्ध हैं।

नेवाज इन्होंने परिमार्जित भाषा में शकुन्तला नाटक लिखा था। इनका काल १७३७, जाति ब्राह्मण और निवास अन्तर्वेद था।

तोषनिधि इनका रस भाव भेद प्रतिपादक सुधानिधि नामक रस ग्रन्थ प्रसिद्ध है। ये उच्च कोटि के रसिक कुशल कवि थे। व्रज-भाषा पर इन्हें पूरा अधिकार था। इनका रचना-काल १७९१, निवास सिंगरौर (इलाहाबाद) और जाति शुक्ल ब्राह्मण है। उदाहरण:

श्री हरि की छवि देखिबे को अँखियां प्रति सेमहि करि देतो।
बैनन के सुनिबे हित स्रोन जिते तित सों करतो करि हेतो॥ आदि।

रघुनाथ—काल, १७९६ और ग्रन्थ इश्क महोत्सव, काव्य-कलाधर, रसिक मोहन, जगत मोहन हैं। ये काशी नरेश बरिवंड सिंह के आश्रय में थे। उदाहरण:

फूलि उठे कमल से अमल हितू के नैन।
कहै रघुनाथ भरे चैन रस सियरे। आदि।

बेनीप्रवीन इनका काल १८८४, जाति बाजपेयी ब्राह्मण, निवास लखनऊ और इनके ग्रन्थ शृंगार भूषण, नवरस तरंग, नानाराव प्रकाश हैं। इन्होंने रस भाव, उनके भेद, नायिका भेद आदि पर परिमार्जित भाषा में अधिकार पूर्ण और सुन्दर अनुभूति पूर्ण लिखा है, जिनके आधार पर ये मतिराम पद्माकर आदि की कोटि में पहुंच जाते हैं। उदाहरण:

घनसार पटीर मिले मिलै नीर चहै तन लावै न लावै चहै।
न बुझै बिरहागिनि झार झरी हूं चहै घन लावै न लावै चहै॥ आदि।

ग्वाल इनका रचना काल १८७९-१९१९, जाति ब्राह्मण, स्थान मथुरा है। इनके रसिकानन्द, रसरंग, कृष्णजू को नख शिख, और दूषण-दर्पण लक्षण ग्रन्थ प्रसिद्ध है। इनके अतिरिक्त यमुना लहरी और भक्त भावन दो ग्रन्थ और मिलते हैं। इन्होंने भी देव की तरह अनेक देश देशान्तरों में भ्रमण किया था। अतः इनको कई भाषाओं, पूरबी, हिन्दी, पंजाबी, गुजराती,

आदि का ज्ञान था, जिनमें, सभी में इन्होंने पद्य लिखे हैं। इन्होंने समस्त कविता अपने समय में प्रसिद्ध और चालू काव्य-पद्धति के आधीन होकर लिखी है, जिससे रस या भाव में कमी या कृत्रिमता आ गई है। उदाहरण—

सोरन के सोरन कीनेंकौ न मरोर रही।
थोरहू न रही न धन घने या फरद की।
अम्बर अमल सर सरिता विमल मल
पंक को न अंक औ न उड़न गरद की॥ आदि।

प्रश्न इस काल में हुए मुसलमान कवियों का सक्षेप में परिचय दो।

उत्तर इस काल में दो तीन मुसलमान कवि हुए हैं जिन्होने ब्रज भाषा में फुटकल कविता और रीतिग्रन्थ लिखे हैं। उनका परिचय निम्न है।

अली मुहिब खां इनका काल १७८७, निवास आगरा है। इन्होंने खटमल बाइसी नामक हास्य का काव्य लिखा। उदाहरणः

बाघन पै गयो देखि बनन में रहे छपि
सांपन पै गयो ते पताल ठौर पाई है।
गजन पै गयो धूल डारत है सीस पर
बैदन पै गयो काहू दारू न बताई है।
जब हहराय हम हरि के निकट गये
हरि मोसों कहि तेरी मति धूल छाई है॥
कोऊ न उपाय भटकत जनि डोलै, सुन
खाट के नगर खटमल की दुहाई है॥

रसलीन इनका काल १७६४, और नाम सैयद गुलाम नबी था। इन्होंने अंगदर्पण और रस प्रबोध नामक दो रीति ग्रन्थ लिखे। ये काव्य के कलापक्ष में अधिक विश्वास करते थे फारसी के ढग पर अतिशयोक्ति अलंकार का अधिक उपयोग किया है। उदाहरणः

तुव पगतल मृदुता चितै कवि बरनत सकुचाहिं।
मन में आवत जीभ लौं, मत छाले परि जाहिं॥ आदि।

आलम इनका रचना काल १७४०-१७६० है। इन्होने माधवानल-

काम-कन्दला नामक प्रेम-काव्य और आलम-केलि नामक कविता का संग्रह-ग्रन्थ लिखा।

ये पहिले ब्राह्मण थे पर एक शेख नाम मुसलमान रंगरेजन के प्रेम में पड़ कर मुसलमान हो गये थे। वह भी कवि थी। कहते हैं एक वार आलम ने उसे अपनी पगडी रंगने को दी, जिसके एक छोर में एक कागज बंधा था, जिस पर 'कनक छरी सी कामिनी काहे को कटि छीन,' कविता की यह अधूरी पंक्ति लिखी थी। शेख ने उसे "कटि को कंचन काटि विधि कुचन मध्य धरि दीन," इस प्रकार पूरा करके वैसे ही बांधकर वापिस पगड़ी दे दी। आलम ने जब पढा तो वह उस पर आसक्त हो गया और मुसलमान बनकर उससे विवाह कर लिया। आलम की अगली रचनाओं में शेख का काफी प्रभाव पड़ा। उदाहरण:

प्रेम रंग पगे जगमगे जगे जामिनी के,
जोबन जोति जगि जोर उमगत है।
मदन के माते मतवारे ऐसे घूमत हैं,
झूमत हैं झुकि झुकि झांक उघरत हैं॥
आलम सो नवल निकाई इन नैनन की,
पांखुरी पदम पै भंवर थिरकत हैं।
चाहत हैं उडिबे को देखत मयंक मुख,
जानत हैं रैनि ताते ताहि मैं रहत हैं॥

प्रश्न इस काल में फुटकल (स्वतन्त्र) कविता करने वाले अर्थात् बिना लक्षण ग्रन्थ या रीतिग्रन्थ लिखे कविता करने वालों में से मुख्य २ का वर्णन करो।

उत्तर इस काल में जो अन्य रीतिग्रन्थों से स्वतन्त्र परिपाटी में रस भाव नख-शिख या प्रेम की विभिन्न दशाओं का चित्र खींचने आदि विषयों पर कविता करने वाले थे, उनमें प्रमुख महाकवि बिहारीलाल थे। अतः प्रथम इन्हीं का परिचय लीजिये।

बिहारीलाल इनका जन्म और मरण-काल क्रमशः १६६० और १७१९ है। ये मथुरा के चौबे ब्राह्मण थे और इनका जन्म-स्थान बसुवा

गोविन्दपुर था। इनके एक भाई और बहिन थी। इनकी माता की मृत्यु के
पश्चात् इनके पिता इन्हें १२ वर्ष की ही अवस्था में लेकर ओरछा नरेश के
दरबार में चले गये जहां बिहारी का आचार्य केशव और उनकी प्रेमिका नर्तकी
प्रवीणराय से जान पहिचान हुई। ओरछा के नज़दीक ही गुढ़ौ गांव में
महात्मा नरहरि रहते थे। इनके पिता ने इन्हे नरहरि दास और केशवदास के
पास पढ़ने लगा दिया। इनका नाम बिहारीलाल नरहरि जी ने रखा था।
इनका विवाह मथुरा की एक चौबे पुत्री से हुआ था। बिहारी जन्म से ही
बहुत रसिक और भावुक थे। उस पर इन्हे केशव और प्रवीणराय जैसे
अत्यन्त रसिक कलाकारों का रंग मिल गया था जिससे इनके उस स्वभाव में
और भी वृद्धि हुई। इसी भावुकता के कारण ये अपनी स्त्री पर आसक्त हो
अपनी ससुराल मथुरा मे ही रहने लगे थे। एक बार ये नरहरिदास जी के साथ
बादशाह शाहजहां से भी मिले, जो इन्हें अपने साथ आगरे ले आया था।
इन्होंने वहां रहते हुए फारसी का अध्ययन किया। वहां से ये आमेर गये।
वहां महाराजा जयसिंह अपनी नवविवाहित नववयस्का पत्नी के सौन्दर्य-
पान में मस्त हो राज काज भूले हुए थे। बिहारी ने उन्हें यह दोहा लिखकर
भेजा कि:

नहिं पराग नहिं मधुर मधु नहि विकास इहि काल।
अलि कलि ही सों बिंध्यो आगे कवन हवाल॥

महाराजा पर यह निशाना इतना फिट बैठा कि वे रंग महल से बाहर
निकल आये और राज काज करने लगे। तब से इनकी कविता पर वे इतने
मुग्ध हुए कि उन्होंने इन्हे अपने पास ही रखा। कहते हैं इनके एक एक
दोहे पर उन्होंने एक एक मोहर इनाम दी थी और उनकी रानी ने इन्हें प्रसन्न
होकर काली पहाड़ी नामक स्थान दिया था। ये महाराजा जयसिंह के साथ
सरहद के युद्ध पर भी गये थे, जिसका वर्णन इन्होंने किया है। अपनी मृत्यु
से पूर्व ये उदासीन होकर वृन्दावन चले गए जहां ये अन्त तक रहे। किन्तु
इस समय का लिखा इनका कोई और साहित्य नहीं मिलता।

बिहारी का केवल एक ग्रन्थ बिहारी सतसई नामक संग्रह प्राप्य है
जिसमें सात सौ दोहे हैं। बिहारी शृंगार रस के सर्वोत्कृष्ट कवि थे। इन्होंने

लिखा भी अधिकांश मे शृंगार ही है। सतसई में यद्यपि नीति, वैराग्य, भक्ति और ज्ञान के भी दोहे हैं, किन्तु शृंगार की तुलना में वे अत्यल्प हैं।

बिहारी ने रीति ग्रन्थकारों की तरह यद्यपि रस अलंकार आदि के प्रथम लक्षण लिखकर फिर उनके उदाहरण स्वरूप कविता लिखकर अपनी कविता को लक्षणों के परतन्त्र नहीं बनाया, किन्तु तो भी काव्य की शास्त्रीय रस रीति आदि की पद्धति का औरों से कहीं बढ़कर सफल पालन किया है। कविता के बाह्य कलापक्ष के तो वे पण्डित थे ही, साथ ही भावों की सूक्ष्मता, गंभीरता और क्षण २ में नवनवोन्मेष शालिनी प्रतिभा के भण्डार थे। जितना उन्हें रसादि और काव्य शैलियों पर अधिकार था उतना ही भाषा पर भी था। भाषा ने उनके भाव के सूक्ष्म से सूक्ष्म इंगित पर नृत्य किया है। भाषा शुद्ध, परिमार्जित, संगीतमय और आश्चर्यजनक रूप से समर्थ व्यंजक है। इन्हीं सब गुणों के कारण ही उनके दोहों की नाविक के तीरों से उपमा दी गई, जो देखने में छोटे लगते हैं पर घाव गहरा करते हैं। यह बात असत्य नहीं। बिहारी का प्रत्येक दोहा चुभता हुआ है। उन्होंने अत्यन्त कंजूसी से शब्दों का प्रयोग किया है। उनके सब दोहे अपने मे पूर्ण काव्य हैं। एक एक दोहा रस का स्वरूप उपस्थित करने वाला चित्र है। एक का दूसरे से कोई सम्बन्ध नहीं। सब एक दूसरे से मुक्तक (स्वतन्त्र) हैं। प्रबंध काव्य में कवि के प्रबंध में या रस प्रवाह में शैथिल्य आने पर वह निभ जाता है। कारण प्रबन्ध काव्य के समस्त पद्य प्रबन्ध के रस से रसवान् हो जाते हैं। परन्तु मुक्तक काव्य के कवि को रस की समस्त साधन सामग्री एक ही पद्य में बिठानी पड़ती है, जो कि बहुत ही कठिन और किसी रस और भाषा सिद्ध कवि के द्वारा ही साध्य है। बिहारी की तंगदस्ती देखो, उन्होंने सर्व प्रथम अपने लिए मुक्तक काव्य प्रणाली चुनी और फिर उसके लिए छन्द भी अत्यन्त छोटा दोहा और सोरठा चुना। किन्तु इसमें उन्हें इतनी सफलता मिली कि उन्हें इन दोहों के आधार पर ही महाकवि की उपाधि मिली। उनके दोहों की प्रशंसा में किसी ने कहा है कि जैसे मदारी अपने अंगों को सिकोड़ कर छोटे से पिटारे में घुस के बैठ जाता है, उसी तरह विस्तृत अर्थ दोहे में सिकुड़ बैठ जाता है, और समय पर विस्तृत हो जाता है।

बिहारी ने अपने दोहों में नायक, नायिका, उनके नख शिख, प्रेम के विभिन्न स्वरूप और दशाएं, ऋतु और ऐसे ही शृंगार सहयोगी विषयों पर बडी सूक्ष्म, चुभती हुई, रसमयी उक्तियां कही है और इन दोहों में सौ में दस बीस तीस ही उच्च कोटि के नहीं हैं प्रत्युत सब के सब एक से एक बढ़कर हैं। स्व० आचार्य पद्मसिंह ने सतसई के बारे में कहा था कि "इस खांड की रोटी को जिधर से भी तोडिये उत्तरोत्तर मिठास मिलेगी।" बिहारी पर संस्कृत, हिन्दी और फारसी के साहित्य का प्रभाव पडा था, इसका प्रमाण उनकी अपनाई काव्य शैलियों या वर्णन की रीतियो से मिलता है। उनकी सूक्ष्मता, बारीक बीनी और अतिशयोक्ति पर स्पष्ट ही फारसी का प्रभाव पड़ा। काव्य के इसी प्रभाव में आकर उन्होंने एक दो दोहों मे शृङ्गार मे निषिद्ध वीभत्स वर्णन भी कर दिया। उत्प्रेक्षा, उपमा, अतिशयोक्ति, रूपक, विरोध, असंगतति, अप्रस्तुत प्रशंसा आदि मुख्य २ अलंकारों का उनका प्रयोग अनुपम है। सारांश मे बिहारी की कविता अपने विकास की चरम सीमा को पहुंची हुई है जो अपनी उपमा नहीं रखती।

इसके इन्हीं गुणों के कारण आज तक बिहारी सतसई पर बीसियों कवियों ने जितने भाष्य टीका टिप्पणी आदि किये उतने किसी काव्य पर नहीं।

उदाहरण:

बत रस लालचलाल की मुरली धरी लुकाय।
सौंह करै, भौंहनि हंसै, देन कहै नटि जाय॥

गुरु गोविन्दसिंह इनका समय १७२३-१७६४ है। इनकी प्रसिद्धि वस्तुत: इतनी कवि के रूप में नहीं है जितनी कि एक पंथ के धार्मिक गुरु, राजनैतिक नेता और सेनापति के रूप में। ये सिखों के दशवें पात शाह थे और इनकी वाणी श्री गुरु ग्रन्थ साहब में संग्रहीत है। इन्होंने ज्ञान, वैराग्य, भक्ति के और वीररस की वाणी लिखी है। सिख पंथ कबीर की निर्गुण की उपासना का आधार लेकर चला था। किन्तु गुरु गोविन्दसिंह को अन्याय और अत्याचार के प्रतिरोध के लिए शस्त्र संचालन भी करना पडा था। अतः उन्होंने शक्ति की उपासना भी की और उसकी स्तुति मे भी वाणी लिखी जिससे वे सगुण उपासक भी ठहरते हैं।

उनकी भाषा शुद्ध ब्रजभाषा है, जिस पर पंजाबी का भी कुछ स्वाभाविक प्रभाव पड़ा है। उदाहरण—

निर्गुन निरूप हौ कि सुन्दर स्वरूप हौ,
कि भूपन के भूप हौ कि दानी महादान हौ।
प्राण के बचैया दूध पूत के देवैया,
रोग शोक के मिटैया किधौं मानी महामान हौ। आदि

कविवर लाल भूषण के समान ही इनकी वीर रस की रचना भी अपने काल का अपवाद स्वरूप है। ये बुन्देलखण्ड के प्रसिद्ध वीर छत्रसाल के आश्रित थे। इन्होंने उनके पिता और उनके वंश के पराक्रम और यशोवर्णन रूप एक छत्रसाल प्रकाश नामक काव्य लिखा है, जो दोहों और चौपाइयों में है और जिसकी भाषा ब्रजभाषा है, जिसमें संस्कृत अवधी और बुन्देलखण्डी शब्दों का सम्मिश्रण है। इनका यह ग्रन्थ वीररस का उत्कृष्ट काव्य है। इन्होंने इसमें यद्यपि अतिशयोक्ति वर्णन भी किया है, पर तो भी ऐतिहासिक तथ्यों को उलटा पलटा नहीं। अतः ऐतिहासिक दृष्टि से इस काव्य का महत्व है। इनकी रचना में काव्य के कलापक्ष का सरल प्रयोग है, ऐसा नहीं है कि भाव दब जाय या तोड़ा मरोड़ा जाय। अतएव इनके वर्णन सरल और सजीव-रसमय दोनों हैं। प्रसाद इनकी कविता का विशेष गुण है।

ये तैलंग ब्राह्मण थे और १७१५ से १७६५ तक के काल में हुए थे। इनका पूरा नाम गोरे लाल बताया जाता है। उदाहरण

काटि कटक किरवान बल बांटि जम्बुकनि देहु।
करि युद्ध यह रीति सों बांटि धरनि धरि लेहु॥

धनानन्द ये भी रस-सिद्ध कवि माने जाते हैं। ये मुहम्मदशाह के मीर मुन्शी थे। ये कवि होने के साथ रसिक भी पूरे थे। ये सुजान नामक एक वेश्या के व्यवहार से विरक्त हो, अन्तिम दिनों में वृन्दावन चले गये थे। इनका जन्म संवत् १७४६ और मृत्यु १७९६ में नादिरशाही हमले में हुई।

इनके बनाए सुजान सागर, सुजानहित, कोकसार, कृपाकन्द, इश्कलता

और प्रीतिपावस आदि ग्रन्थ मिलते हैं। ये प्रेम कवि थे, और प्रेम की विशेषतः प्रेम की विरहपीर की मार्मिक और गंभीर अनुभूति-पूर्ण अभिव्यंजना की है, जिसमें अलंकार आदिकृत कृत्रिमता नाम को भी नहीं है। और नाहीं विहारी आदि की तरह विशेष बारीक ख्याली और अतिशयोक्ति से काम लिया गया है। इनके भाव वास्तविक हृदय की अनुभूति लिए हुए सरल, स्वाभाविक, रीति अलंकार आदि से समन्वित ब्रजभाषा में अपने स्वाभाविक रूप में व्यक्त हुए हैं। उदाहरण

तब तौ दुरि दूरहि ते मुसकाय बचाय के और की दीठि हंसे,
दरसाय मनोज की मूरति ऐसी, रचाय के नैनन में सरसे।
अब तो उर मांहि बसाय कै मारत एजू बिसासी कहां धौ बसे,
कुछ नेह निवाह न जानत है तो सनेह की धार में काहे धंसे?

नागरीदास इनका जन्म संवत् १७१८ है। ये वस्तुतः कृष्णगढ़ के राजा थे। इनका नाम महाराज सावंतसिंह था। ये शाही दर्बार में थे। इनकी गैरहाज़िरी मे इनकी मृत्यु के पश्चात् छल से इनके भाई ने गद्दी हथिया ली थी जिसका मराठों की सहायता से इन्होंने फिर उद्धार किया था। किन्तु इन घरेलू रागद्वेषों और झगडो से तंग आकर संसार से विरक्ति धारण कर वृन्दावन आकर रहने लगे थे, जहां इनका नाम नागरी दास हुआ। इन्होंने ज्ञान वैराग्य और भक्ति पर लिखा है। इनकी भाषा ब्रजभाषा है जो स्वाभाविक है। अन्य विषयों की अपेक्षा भक्ति पर अधिक लिखा है। इनकी कुल मिलाकर ७३ पुस्तकें बताई जाती हैं। एक उदाहरण

जहां कलह तहं सुख नहीं कलह सुखन को सूल।
सबै कलह इक राज में राज कलह को मूल॥
मैं अपने मन मूढ़ तें डरत रहत हौं हाय।
वृन्दावन की ओर तें मति कबहूं फिरि जाय॥

सूदन ये भी इस काल के वीररस के कवि हैं। ये भरतपुर महाराजा सुजानसिंह के आश्रित थे और इन्होंने उनकी प्रशंसा में एक सुजान चरित्र नामक वृहद् ग्रन्थ लिखा। इसमें १८०२ से १८१० तक की घटनाओं का वर्णन है। पर तो भी इनका काव्य भूषण या लाल के वीर काव्यों की कोटि

तक नहीं पहुंचता। वर्णन शिथिल, शब्दों की घुड़दौड़ और बेतरीकी तोड़ मरोड़ के कारण दुरुह हैं। कवि का शब्दों की ध्वनि पर विशेष प्रयत्न है, उनके अर्थों या भावों पर नहीं। पूरबी, पंजाबी, संस्कृत, राजस्थानी, मारवाडी, खडी आदि सम्मिश्रण से उसके रूप का कहीं पता नहीं लगता। ये मथुरा के चौबे ब्राह्मण, लगभग १८२० में हुए थे। उदाहरण

दव्वत लुत्थिनु अव्वत इक्क मुखव्वत से।
चव्वत लोह अचव्वत शोनित गव्वत से॥

गिरिधर दास ये भारतेन्दु जी के पिता थे और इनका असली नाम गोपालचन्द्र था। इनका काल १८६० से १९१७ तक है। इन्हें संस्कृत और हिन्दी का अच्छा ज्ञान था। ये व्रजभाषा के उत्कृष्ट कवि थे और कुल मिला कर इन्होंने ४० ग्रन्थ लिखे, जिनके नाम गर्गसंहिता, जरासंघ (अपूर्ण) आदि हैं। इनकी भाषा मधुर और परिमार्जित थी, अनेक स्थलों पर अनुप्रास आदि के बाहुल्य से कविता केवल वैचित्र्य मूलक होकर रह गई है, भाव दब गये हैं, उनका पता नहीं लगता। तो भी सर्वत्र ऐसा नहीं है। भक्ति आदि की कथाओं में आपने अपनी भाषा और शैली बहुत सरल रखी है। एक उदाहरण

जगह जड़ाऊ जामें जड़े हैं जवाहिरात,
जगमग जोति जाकी जग में जमति है।
जामे जदुजानि जान प्यारी जातरूप ऐसी,
जगमुख ज्वाल ऐसी जोन्ह सी जगति है॥ आदि।

प्रश्न—इस काल के और इस श्रेणी के कवियों का संक्षेप में परिचय दो।

उत्तर रीति ग्रन्थ प्रणाली से स्वतन्त्र रूप में रस मात्र नायक नायिका ऋतु नख शिख, ज्ञान वैराग्य भक्ति के काव्य करने वाले इस काल के जो अन्य कवि हुए हैं उनका संक्षेप में परिचय निम्नलिखित है।

संबलसिंह चौहान ये औरङ्गजेब के समय में १७१८–१७८१ तक वर्तमान रहे। इन्होंने रूप विलास नामक पिंगल ग्रन्थ, ऋतु संहार का हिन्दी अनुवाद और महाभारत की कथा दोहा चौपाई में अवधी में लिखी।

वस्तु-स्थिति का प्रवाहमय वर्णन करने में ये विशेष दक्ष थे। उदाहरण

अभिमनु धाइ खडग परहारे संमुख जेहि पायो तेहि मारे॥ आदि।

वृन्द इनकी नीति के सात सौ दोहों वाली वृन्द सतसई प्रसिद्ध ग्रन्थ है। ये मेड़ते के रहने वाले और कृष्णगढ़ के महाराज राजसिंह के गुरु थे। इनका काल १७६१ है।

महाराज विश्वनाथसिंह—ये रीवां के महाराज थे, जो १७७८ से १७९७ के काल में वर्तमान थे। ये बड़े विद्या प्रेमी और गुणी जनों का सत्कार करने वाले थे। इनके रचे ३२ ग्रन्थ बताये जाते हैं। इसके अतिरिक्त इन्होंने ब्रज भाषा में सर्व प्रथम आनन्द रघुनन्दन नाम का नाटक भी लिखा था। ये वस्तुतः भक्त कवि थे।

जोधराज—इन्होंने रणथम्भौर के हम्मीरदेव के चरित और उसके अलाउद्दीन के साथ हुए युद्धों का हम्मीर रासो नामक ग्रन्थ में बड़ी जोशीली भाषा में वर्णन किया है। इतिहास की घटनाओं को यद्यपि इन्होंने ज्यों का त्यों ही रखा है, तो भी प्रसंगवश अवान्तर कथाओं की कल्पना कर ली गई है। इनका काल १७५७ माना जाता है। उदाहरण

जीवन भर न संजोग जग कौन मिटावै ताहि।
जो जनमै संसार में अमर रहै नहीं आहि॥

गिरधर कविराय—ये १७७० में वर्तमान थे। इनकी लिखी कुण्डलियाँ गांवों में अत्यन्त प्रसिद्ध हैं। इसके अतिरिक्त इनका कुछ अता पता नहीं।

हंसराज बख्शी इनका काल १७९९ था और ये पन्ना नरेश अमानसिंह के दरबारी कवि थे। ये सखी सम्प्रदाय में दीक्षित थे, अतएव इनकी कविता में प्रेम का आदर्श भी है। इनकी रचना परिमार्जित कोमल कान्त सुगठित पद वाली भाव और रसमय है। उदाहरण

ए रे मुकटवार चरवाहे गाय हमारी लीजो।
जाय न कहूँ तुरत की ब्यानी सौंपि खुरप कै दीजो॥ आदि।

बेताल इन्होंने विक्रमादित्य को संबोधन करके कुण्डलियां लिखी हैं। ये जाति से बन्दी जन थे और १७३४ में जगे थे।

गुमान मिश्र इनका काल १८००–१८४०, निवास स्थान महोबा, जाति मिश्र ब्राह्मण, और आश्रयदाता पिहानी के राजा अकबर अली खां थे। इन्होंने नैषध काव्य के कई छन्दों का पद्य में अनुवाद किया था जिसमे ये पूर्णतया सफल नहीं हुए। उदाहरण

दिग्गज दबत दबकत दिग्पाल भूरि
धूरि की धुंधेरी सों अंधेरी आभा भान की। आदि।

बोधा इनका काल १८०४, स्थान राजापुर, जिला बांदा, सरयूपारी ब्राह्मण, असली नाम बुद्धसेन था। इन्होंने पन्ना नगर की एक वेश्या सुभान के प्रेम में इश्क नामा और विरह वारीश लिखे थे। इनके एक सवैये का निम्न अन्तिम चरण बहुत प्रसिद्ध है।

कवि बोधा अनी घनी नेजहुंते चढि तापे न चित्त डरावनो है।
यह प्रेम को पंथ कराल महा तरवारि की धार पै धावनो है॥

मधुसूदनदास इनका काल १८३६, मथुरा के चौबे ब्राह्मण थे। इन्होने गोविन्ददास नामक एक व्यक्ति की प्रार्थना पर लव कुश के अश्व के लिए लडे गये युद्ध का वर्णन रामाश्वमेघ नामक प्रबन्ध काव्य में दोहा चौपाई में किया है। उदाहरण —

निरखि काल जित् कोपि अपारा।
विदित होई करि गदा प्रहारा॥ आदि।

संमन इनका जन्म काल १८३४, पूरा नाम संमन मल्लावा, जाति के विप्र और हरदोई के निवासी थे। इनके सीधे सादे नीति के दोहे जन-साधारण में प्रसिद्ध हैं। उदाहरण

निकट रहे आदर घटै दूरि रहै दुख होय,
संमन या संसार में प्रीति करौ जनि कोय॥

दीनदयाल गिरि काल १८५६–१६१५, गोसांई ब्राह्मण, निवास काशी में था। भारतेन्दु के पिता बा० गोपालचन्द्र की मित्र मंडली में थे। इनकी अन्योक्ति कल्पद्रुम रचना अत्यन्त प्रसिद्ध है। अन्य ग्रन्थ अनुराग बाग, वैराग्य दिनेश, विश्वनाथ नवरत्न, और दृष्टान्त तरंगिणी आदि लिखे। ये कुशल और समर्थ कवि थे, जिनका काव्य के कला और भाव दोनों पक्ष

पर समान अधिकार था। उदाहरण

चल चकई तेहि सर विषे जहँ नहिं रैनि विछोह।
रहत एक रस दिवस ही सुहृद हंस सन्दोह॥

चन्द्रशेखर काल १८५५ १९३२, स्थान जिला फतहपुर मुअज्जमाबाद और जाति बाजपेयी ब्राह्मण थे। ये अन्तिम दिनों में पटियाला नरेश नरेन्द्रसिंह के आश्रित रहे जिनके कहने पर इन्होंने हम्मीर हठ नामक वीर काव्य की बडी ओजस्विनी भाषा मे रचना की। अन्यग्रन्थ विवेकविलास, रसिक विनोद, हरि भक्ति विलास नखसिख आदि लिखे। इनका वीर वर्णन सयत और औचित्य पूर्ण है, भाषा भी अस्वाभाविक नहीं हो पाई है। अतएव इनका वीर और शृंगार आदि का वर्णन सरस है। उदाहरण—

थोरी थोरी वैसवारी नवल किसोरी सवै।
भोरी भोरी बातन बिहँसि मुँह मोरति ॥आदि।

ठाकुर काल १८२३- -१८८०, जाति कायस्थ, स्थान ओरछा और आश्रयदाता जैतपुर नरेश थे। ये बुन्देल खण्डी ठाकुर थे। इन्होंने प्रेम और होली आदि त्योहारो पर बडी चुभती हुई सरस भावपूर्ण मधुर कवितायें की हैं। इनकी कविताओं का संग्रह स्व० दीन जी ने ठाकुर-ठसक नाम से प्रकाशित किया था। उदाहरण

अपने अपने सुठि गेहन मे चढ़े दोउ सनेह की नाव पै री।
अंगनान मे भीजत प्रेम भरे समयो लखि मैं बलि जांव पै री॥ आदि

पजनेश---रचना काल १९००, स्थान पन्नानगर था, ये फारसी के पंडित थे। इनकी व्रजभाषा की मुक्तक कविताओं का संग्रह पजनेस प्रकाश का नाम प्रसिद्ध है। इन्होने कवित्त सवैये लिखे है। शृंगार वर्णन में भी रस विरोधी वर्ण वर्ग का इन्होंने त्याग नही किया। उदाहरण

पजनेस तसद्दुकता बिसमिल जुल्फे फुरकत न कबूल कसे।
महबूब चुनां बदमस्त सनम अजदस्त अलावल जुल्फ बसे॥ आदि

द्विजदेव अयोध्या के महाराज मानसिंह का नाम द्विज देव था। इन्होंने व्रज में शृंगार बतीसी और शृंगार लतिका नामक दो काव्य लिखे। आपका ऋतु वर्णन विशिष्ट माना जाता है। भाषा परिमार्जित कोमल

मधुर पदावली युक्त है, जिसमें अनुप्रास आदि की स्वाभाविक छटा है, जो भावो को अपने चमत्कार में दबाने की बजाय उन्हे उकसाती है। रीति काल के ये अन्तिम कवि ठहरते हैं। उदाहरण

मिलि माधवी आदिक फूल के व्याज विनोदलता बरसाया करैं।
रचि नाच लतागन तानि वितान सबै विधि चित्त चुराया करैं॥
द्विजदेव जू देखी अनोखी प्रभा अलिचारण की रति गायो करैं।
चिरजीवो बसंत! सदा द्विजदेव प्रसूननि की झरि लायो करैं॥

प्रश्न—हिन्दी के रीति काल मे लक्षण ग्रन्थ और स्वतंत्र परिपाटियो पर लिखे गये दोनो प्रकार के साहित्यो का मूल्य या महत्व बताइये।

उत्तर भक्ति काल के अन्त तक काव्य भाषाएं पर्याप्त विकसित और समृद्ध हो चुकी थीं और उनमे काव्य रचना भी विस्तृत परिमाण मे हो चुकी थी। अब आवश्यकता थी कि उसमें संस्कृत के समान काव्य और उसके रस रीति अलंकार आदि का विवेचन वर्णन हो। सो यह कार्य केशव आदि आचार्यों से होता है। उन्होंने संस्कृत ग्रन्थो के आधार पर हिन्दी मे अलंकार आदि का निरूपण कर उनके उदाहरण स्वरुप कविताएं लिखी। आगे चलकर कविलोग इसी पद्धति पर लिखना महत्व-शाली समझने लगे और बड़े बड़े कवियो ने इस प्रणाली मे कविता की, अर्थात् पहले लक्षण लिखे और फिर उनके उदाहरण स्वरूप कविताए लिखीं। इन सब आचार्य कवियों में प्रत्येक को समान सफलता मिली हो यह बात नहीं। इनमें कोई आचार्य बड़ा था, तो कवि छोटा और कोई कवि बड़ा था तो आचार्य छोटा। आचार्यत्व और कवित्व दोनों पर समान प्रभुत्व रखने वाले इनमें इने गिने ही थे। उनकी भी प्रतिभा का पूरा विकास नहीं हो पाया। कारण पद्यों मे अलंकार रस भाव आदि का वर्णन तो हो सकता है पर उनका विवेचन और तर्क पूर्ण आलोचना सम्भव नहीं। अत एव उन लोगों ने हिन्दी मे काव्य विषयों की अवतारणा तो करदी और उनका, उनके भेदोपभेदों का विस्तृत वर्णन भी किया किन्तु संस्कृत के जैसा उनका सांगोपांग तर्कपूर्ण विवेचन नहीं हो पाया। उनके काव्य लक्षणों के उदाहरण में कविताएं हुई वे भी यद्यपि उच्च कोटि की है, तो भी लक्षणों की परिधि

कि परतंत्र होने से उनमें प्रतिभा का वह स्वतंत्र चमत्कार नहीं, जो सम्भवत् तथा उनकी स्वतंत्र रचनाओं में होता। तो भी इनके कारण हिन्दी में एक नवीन और आवश्यक विषय का सांगोपांग वर्णन हुआ और उसकी समृद्धि हुई।

कवित्व की दृष्टि से लक्षण ग्रन्थों की रीति से स्वतंत्र काव्य रचना करने वालों को ज्यादा स्वतंत्रता रही। उन्होंने विभिन्न विषयों पर, विभिन्न रसों मे मार्मिक, चुभती हुई रसमयी रचनाएं कीं, जो किसी भी साहित्य के लिए गर्व की वस्तु हैं। शृंगार और प्रेम का इस काल का हिन्दी का साहित्य संसार के किसी भी बड़े से बड़े साहित्य से टक्कर ले सकता है। वस्तुतः इन दोनों ही प्रकार के आचार्यों का हिन्दी के साहित्य में अमर स्थान है, और उनका साहित्य हिन्दी की अमूल्य निधि है।

आधुनिक काल १६००

प्रश्न संक्षेप में इस काल की राजनैतिक सामाजिक और धार्मिक दशा पर दृष्टिपात करिये।

उत्तर यह काल वस्तुतः सदियों की विलासितापूर्ण तंन्द्रा के पश्चात् जागरण का काल है भारत में- अखिलसुख। मुगल शासन की दो बड़ी विशेषतायें थीं। उन्होंने जहां असंख्य प्रकार से अत्याचार किये, वहां यह भी किया कि सदैव जरा जरा सी बातों पर संघर्ष करते हुए अनेक छोटे मोटे रजवाड़ों को, शक्ति से आधीन कर, समग्र देश को एक शासन-सूत्र में पिरोने का प्रयत्न किया और व्यवस्था द्वारा शान्ति उत्पन्न करने की चेष्टा की। इतिहास से सिद्ध है अपने इन दो कार्यों में वे बहुत हद तक सफल रहे। अकबर से लेकर औरंगजेब से पहिले तक सांस लेने की और अपनी नवीन परिस्थितियों के साथ अपना उचित सम्बन्ध बनाने की फुर्सत मिली थी। इस काल में दक्षिण और राजपूताने के कुछ अंश मे थोड़े बहुत संघर्ष या महाराणा प्रताप जैसे देशभक्तों द्वारा देशोद्धार के वीर प्रयत्न अवश्य होते रहे, अन्यथा तो यह काल शान्ति का ही है। औरंगजेब का समय मुगल सल्तनत के उखड़ने का काल है जब कि अपने चरमोत्कर्ष तक जाकर उसकी

नींव हिल चुकती है।

औरंगजेब ने अपनी धर्मान्ध और अत्याचारिणी नीति द्वारा उसकी जड़ें बिल्कुल खोखली करदीं थीं। फलतः उसके समय में ही देश पर संघर्ष के बादल फिर इकट्ठे होने लगते हैं। अनेक मुसलमान सूबेदार उच्छृंखल हो जाते हैं, उन्हें दबाने के लिए युद्ध होते हैं। दक्षिण के स्वतंत्र नवाबों से युद्ध होते हैं। एक ओर राजपूताने में विद्रोह होता है, तो दूसरी ओर महाराष्ट्र-सत्ता प्रबल होती है। उधर पंजाब में विद्रोह होता है। औरंगजेब के बाद के बादशाहों को अपने साम्राज्य की रक्षा में ही जीवनभर विफल प्रयास करने पड़े। भारत की राजनैतिक दशा प्राय फिर वही हो रही थी, जो कि मुसलमानों के हमलों के प्रारम्भ में थी, अर्थात् अराजकता के चिन्ह उपस्थित हो गये थे। ऐसे ही समय १७वीं सदी में देश में दो तीन अन्य बाह्य शक्तियां [फ्रैंच, डच, अंग्रेज़] भी पदार्पण कर चुकी थीं, जिनका उद्देश्य उस समय तो अपने चीज़ों के लिए मार्केट ढूंढना था। यहां की राज्य-सत्ता को शक्तिहीन और विनाशोन्मुख उखड़ी पुखड़ी दशा में देखकर स्वाभाविक ही उनमें यहां राज्य सत्ता स्थापित करने का ख्याल उठता है। संघर्ष का नया युग आता है। ये बाह्य शक्तियों में से कोई मुगलों के पक्ष में और कोई उनके विद्रोहियों के पक्ष में रह कर युद्ध में भाग लेने लगीं। कहने की आवश्यकता नहीं, इन बाह्य शक्तियों में अंग्रेज़ अधिक कूटनीतिज्ञ और शक्तिशाली रहे, उन्होंने आहिस्ता आहिस्ता मुगलों की केन्द्रीय शक्ति को उखाड़ कर उसका स्थान लेना प्रारम्भ कर दिया, अपने जिस कार्य में उन्होंने अठारहवीं सदी के समाप्त होते होते ही पर्याप्त सफलता प्राप्त करली। अनेक भागों में अपना राज्य कायम कर लिया। फलतः मुसलमानों और उनके साथ हिन्दुओं में भी असन्तोष, क्रोध और विद्रोह की भावनायें प्रबल हुईं। ५७ का विद्रोह हुआ। अंग्रेज़ों ने सफलता पूर्वक उसका दमन कर, अंतिम मुग़ल बादशाह को फांसी दे सर्वात्मना अपना राज्य जमा लिया। अन्य फ्रैंच आदि शक्तियों को युद्ध से, समझौते से, सौदा करके यहां से निकाल दिया और अपना साम्राज्य दृढ़ करने में लगे। राजों रजवाड़ों से सन्धियां कीं, समझौते किये, भूमि का प्रबन्ध किया, जमींदार बनाये, कल कारखाने, सड़कें और

बाद में रेल तार, बिजली मोटर हवाई जहाज सभी कुछ आये। किन्तु इन सब उन्नति के साधनों के मूल में उनकी एक ही प्रवृत्ति काम कर रही थी, अपने साम्राज्य को स्थायी और सुसन्सचालित रखने की। इसी राज्य-संचालन के लिए उन्हें कार्य कर्त्ताओं की आवश्यकता थी। इसी के लिए उन्होंने स्कूल, कालिज, विश्वविद्यालय आदि कायम किए, उनको प्रोत्साहन दिया। अंग्रेज़ी शिक्षा का प्रचार किया। उच्चवर्ग के उत्साही लोग इंगलैंड पढ़ने भी गये, वकील बैरिस्टर प्रोफेसर बन कर आये। कुछ समझ में आने पर उनकी और आंखे खुलती हैं और स्वदेशी के आधार पर विद्रोह की भावनायें प्रबल होने लगती हैं, जो अन्त मे जोर पकड़ कर नेशनल कांग्रेस के रूप मे सामने आती हैं। कांग्रेस अंग्रेज़ों को निकाल अन्त में स्वराज्य कायम करने में सफल होती है और अब नव-विधान काल है। राजनैतिक चित्र इस समय का यह है।

राजनैतिक दशा मे इतना उथल पुथल परिवर्तन होने पर धार्मिक और सामाजिक दशा भी उससे कैसे अछूती रह सकती है? उस पर भी पूरा प्रभाव पड़ा। हिन्दुसमाज या भारतीय समाज बड़े २ आक्रमण झेलकर भी अपनी सभ्यता और संस्कृति के बल पर कायम रहा था, पर अब आकर उसके अपने ही शरीर में इतने विकार आ गए थे कि वह उन्हीं के कारण दिनो दिन ग्रस्त हो क्षीण हो रहा था। धर्म में वैष्णव, शैव, शाक्त, कबीर पंथी नाथपंथी, वैरागी, गोसाईं आदि शतशः मतमतान्तर उत्पन्न हो रहे थे जिनके पारस्परिक संघर्ष के कारण सामाजिक व्यवस्था लुप्त हो रही थी। जातिगत धर्मगत और वंशगत भेद भाव का ठिकाना नही था। स्त्रियो और ग़रीबों की बुरी दुर्दशा थी। उससे भी अधिक अछूतों की। अनेक रूढ़ियां, कुरीतियां ऐसी प्रचलित थीं, जिनसे दिनों दिन समाज क्षीण हो रहा था संख्या में हृदय में और मस्तिष्क में। अछूतों की सबसे बुरी दशा थी। वे लोग विधर्मी बन रहे थे। जरा जरा सी बातों पर जाति से बाहर लोग निकाल दिये जाते थे। स्त्रियां विशेष शिकार होती थीं। सती जैसी प्रथा का भी चलन था। इस दशा का पहिले मुसलमानो ने फायदा उठाया और अनेक उपायों से धर्म-परिवर्तन करके अपनी संख्या बढ़ाई। उनका यह काम अब भी बराबर चल रहा है।

अब यहां एक और नवीन धर्म के लोग भी आ गये थे। वे लोग थे ईसाई पादरी, जो योरोपीय शक्तियों के साथ ही धर्म प्रचारार्थ यहां आये थे। वे सभी तरह के उपाय बरतते थे। लोभ देते थे, क्रोध और डर भी दिखाते थे और धोखे और छल से भी काम लेते थे। बहुत से जाति-बहिस्कृत होकर जबर्दस्ती कोई चारा न होने पर उनके चुंगल में फंसे और बहुत से स्वेच्छा से अपनी दशा से छुटकारा पाने के लिए। धर्म और समाज की ऐसी ही जीर्ण शीर्ण रोग ग्रस्त दशा के समय स्वामी दयानन्द, भा० हरीश्चन्द्र और राजा राममोहनराय राम और विवेकानन्द हुए। स्वामी दयानन्द अपने समय की सब सेआवश्यकता की उपयुक्त मूर्ति थे। उन्होंने हिन्दु समाज के अनेक झूठे सच्चे वाह्य आडम्बरों में ग्रस्त मत मतान्तरों का डण्डा लेकर खण्डन किया, समाज के दोषों, कुरीतियो को मूल से उखाड़ने और समाज मे एकता स्थापित रखने का भीष्म प्रयास किया। आर्य समाज की स्थापना की। कहना नहीं होगा उत्तर भारत में उनके प्रचार ने काया पलट कर दी। उधर बनारस में भा० हरिश्चन्द्र और बंगाल में राम मोहन राय जैसे व्यक्तियो ने अपने प्रचार द्वारा हिन्दु समाज को हिला झुला कर चैतन्य किया और उन्हें आधुनिक काल के उपयुक्त नई दृष्टि प्रदान की। इन सबने स्त्रियो और अन्य पददलित अछूत आदि का पक्ष ले उनकी स्वतन्त्रता के लिए जनमत उत्पन्न किया। वस्तुत: ये महानुभाव यदि अपने अपने समय में होकर गिरते पड़ते हिन्दु समाज को सहारा न लगाते तो आज क्रिश्चिअन मुसलमानों से भी बढ़ी अल्पसंख्यक [माईनौरोटी] होती। इन्होंने हिन्दु समाज में एक चैतन्य उत्पन्न कर दिया, जागृति प्रदान की, जिससे वह आंखें मल कर अपनी दशा का ज्ञान करता है और अपनी दशा से घोर असन्तुष्ट हो, उसकी व्यवस्था, सुरक्षा और उसे सुधार कर वर्तमान के अनुकूल ढालने के प्रयत्न में लगता है।

प्रश्न इस समस्त साहित्य का संक्षेप में परिचय दो।

उत्तर यह युग वस्तुतः असन्तोष का, विद्रोह और स्वतंत्रता का युग है। इसमें चारों ओर यही प्राचीन के प्रति विद्रोह और नवीन स्वतन्त्रता की भावना दृष्टिगत होती है। समाज में परम्परागत रूढियो का, रिवाजों और

परम्पराओं का विद्रोह होता है, धर्म में प्राचीन सिद्धान्तों के, विचारों और आचारों के प्रति विद्रोह होता है और राजनीति में वर्तमान अंग्रेज़ी सत्ता का विद्रोह होता है। ऐसे लगता है जैसे सदियों से अनेक बन्धनों से कसी हुई भारतीय आत्मा उन सब को तोड़ फोड़ कर स्वतंत्र होने को छटपटाती है। इन बन्धनों में धर्म के बन्धन भी आ गये और समाज और राजनीति के भी।

साहित्य और भाषा में भी यही प्रवृत्ति कार्य रही है। उसमें पुरानी भाषा के प्रति, पुराने काव्य के नियमों और कविता पद्धतियों के प्रति विद्रोह सा है। इन सबसे स्वतन्त्र हो साहित्यकार नवीन स्वतन्त्र रूप में चलना चाहता है। उसे पुरानी उपमाओं से, पुराने रूपकों से और पुराने कवि समय-सिद्ध वर्णनों से चिढ़ सी है। उसे पुराने काव्य के आदर्श थोथे लगते हैं। वह पुरानी रचना परिपाटी का आदर नहीं करता। उसे अब पुरानी भक्ति शृङ्गार नीति धर्म आदि की रचनायें अच्छी नहीं लगती। वह अब प्राचीन कवियों के समान बड़े २ विशिष्ट आदमियों की बात न कह, साधारण जन की बात करता है। स्वर्ग और पाताल की न कह, इस जगत् की कहता है। संकीर्णता से ऊपर उठकर उदारता और स्वतन्त्रता का ग्रहण करता है। नये भाव, नई भाषा, नये अलंकार, नई रचना पद्धति, नवीन कल्पना और नवीन और स्वतंत्र प्रतिभा और दृष्टिकोण, इस समय के काव्य की कुछ एक बड़ी विशेषतायें हैं। एक और बड़ी विशेषता इस काल की यह है कि इस समय हिन्दी के एक नवीन रूप का साहित्य में अवतार, परिवर्द्धन, संस्कार और परिमार्जन होता है। भाषा का यह रूप खड़ी बोली है, जिसमें काव्य से लेकर समस्त विषयों पर ग्रन्थ रचना हुई और जो आज हिन्दी साहित्य और भारतीय स्वतन्त्र राष्ट्र की सर्व स्वीकृत भाषा है। इस काल से पहिले हिन्दी का कोई उचित रूप से विकसित गद्य-रूप प्रचलित नहीं था, जो कमी इस समय में आकर पूरी हो जाती है। किन्तु इस काल में भी ब्रज के प्रेमी कवियों का अभाव नहीं रहा। उन्होंने इस काल में भी ब्रज-भाषा में काव्य रचना की। फलतः इस काल का साहित्य हमें तीन रूपों में मिलता

है खड़ी बोली के गद्य के रूप में, खड़ी बोली के पद्य रूप में और ब्रज-भाषा के पद्य के रूप में।

प्रश्न आधुनिक काल के हिन्दी गद्य के विकास का संक्षिप्त ऐतिहासिक विवरण दीजिये।

उत्तर भाषा-विज्ञान के आधार पर भाषा में प्रथम गद्य रूप का ही चलन होता है, पद्य रचना उसके पश्चात् ही प्रचलित होती है। हिन्दी में विशेषतः उसके खड़ी बोली के रूप में भी ऐसा ही हुआ। हिन्दी साहित्य में यद्यपि गद्य का कोई इतना प्राचीन विकसित रूप नहीं दीखता, जितना कि पद्य का। किन्तु इसका यह अभिप्राय नहीं कि हिन्दी में बोल चाल या साधारण व्यवहार के लिए गद्य थी ही नहीं। गद्य थी, अवश्य थी, हां उसमें साहित्य लेखन की परिपाटी नहीं थी, ना ही उसमें इतनी क्षमता ही थी। इस समग्र काल में हिन्दी गद्य अपने विविध रूपों में वर्तमान बोलचाल और व्यवहार के काम में आती रही। कुछ एक धर्म प्रचारकों ने इसमें प्रचार भी किया। किन्तु इसका किसी एक ही रूप में, आधुनिक काल से पहिले, उचित विकास नहीं हुआ था, जिससे इसमें साहित्य-रचना संभव होती। यह कभी अपने राजस्थानी-प्रधान रूप में, कभी पूर्वी प्रधान रूप में, कभी ब्रज प्रधान रूप से और कभी पश्चिमोत्तरीय प्रदेश शब्दों की प्रधानता लिये रूप में समय समय पर चलती रही।

हिन्दी का अवतार या विकास अपभ्रन्श से होता है। और अपभ्रन्श उस समय, भिन्न भिन्न प्रदेशों मे, अपने जिन रूपों मे प्रचलित थी, देश भाषा [हिन्दी] के विकास में भी उतने ही रूप हुए। उनमे, राजस्थानी, पूर्वी अवधी, ब्रज, खड़ी, बिहारी, पंजाबी आदि सभी आ जाती हैं। समय विशेष पर राजनैतिक या धार्मिक कारणो से, इनमें से जिस प्रदेश को भी प्रबलता हुई कि उसीकी भाषा भी उतने समय मे प्रबल रही। कोई समय राजस्थानी का रहा, तो कोई पूर्वी रूपों का, कोई ब्रज का रहा, तो कोई उत्तरी भारत की बोली का। अन्तिम काल मे हिन्दी गद्य का उत्तर-पश्चिमी रूप ही प्रबल हुआ। उसका कारण यह था कि भारत के एक-मात्र स्वामी मुसल-मान हो गये थे और उनकी शक्ति का, साम्राज्य का केन्द्र-स्थान यही पश्चि-

मोत्तर प्रदेश ही रहा। अतएव इसी प्रदेश [आगरा, मेरठ, दिल्ली] की भाषा भी प्रमुख हुई। कारण, राजधानी होने के नाते यहां दूर दूर से सिपाही, सौदागर, सेठ साहूकार आते थे और जाते हुए यहां की बोली भी ले जाते थे, इसके अतिरिक्त मुगल सेनाएं और अफसर भी देश के अन्य भागों में जाते हुए यही बोली ले जाते थे, जिससे इसका प्रचार बढ़ रहा था। किन्तु साहित्य रचना गद्य में आधुनिक काल में ही प्रारंभ हुई। यूं नाममात्र के लिए हिन्दी गद्य प्राचीन काल में भी लिखित प्रयोग में आई ही थी, पर उसका लिखित साहित्य उस काल का अत्यल्प है।

गद्य का लिखित रूप हमें प्रारंभ से दो रूपों में प्राप्त होता है, एक ऐसा जिसमें व्रजभाषा की प्रमुखता है और दूसरा ऐसा जिसमें उत्तर भारतीय तद्भव शब्दो की और फारसी के शब्दो का सम्मिश्रण है। पहिले रूप में शृंगार शतक की टीका, गोरख पंथियो का साहित्य, विट्ठल दास का मुण्डन, गोकुल नाथ की चौरासी वैष्णवों की वार्ताएं, गग और जटमल आदि की गद्य कथाएं आदि मिलती है और दूसरे फारसी मिश्रित उत्तर भारती रूप में कबीर, खुसरो इन्शाअल्ला खां आदि ने लिखा। खुसरो ने तो जान बूझ कर हिन्दू मुसलमानो के पारस्परिक व्यवहार के लिए हिन्दी गद्य के निर्माण या प्रचार के लिए प्रयत्न किया, अपने जिस उद्देश्य का जिक्र स्पष्ट रूप से उन्होंने अपने खालिक बारी नामक फार्सी हिन्दी कोष में भूमिका मे किया है। पर वस्तुतः तो हिन्दी गद्य का उचित दर्शन हमें १९ वीं सदी में मुंशी सदासुख के सुख सागर में ही होता है। इनके बाद में फिर इंसाअल्ला खां लल्लू लाल सदल मिश्र हुए। इनमें अन्तिम ने फोर्ट-विलियम्स कालिज के प्रिंसिपल गिलक्राइस्ट के कथन पर कोर्स के लिये पुस्तकें लिखी थीं। इसके पश्चात् तो हिन्दी गद्य के उत्थान के लिए, बड़े बड़े लोगों, राजाशिव प्रसाद सितारे हिंद, राजा लक्ष्मण सिंह, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र आदि ने विशेष प्रयत्न किये। किन्तु प्रारंभिक काल में ही, लल्लू लाल आदि के समय हिन्दी के दो रूप चालू हो गये थे—एक लल्लू लाल की भाषा का, जो वस्तुतः संस्कृत मिश्रित व्रजभाषा गद्य है, जिसमें फारसी के शब्द नहीं रखे गये हैं। दूसरा इंशाअल्ला खां या सदल-मिश्र का फ़ारसी मिश्रित।

मुन्शी सदासुख लाल की भाषा में भी फारसी का उचित समावेश है। वस्तुतः हिन्दी के आधुनिक गद्य का पूर्व रूप इन्ही तीनों महानुभावों की भाषा को माना जाता है। लल्लू लाल की भाषा आगे के किसी साहित्यकार का आदर्श नहीं रही। भाषा के रूप के विषय में यह विवाद और अधिक स्पष्ट रूप में राजा लक्ष्मण सिंह और शिवप्रसाद सितारे हिन्द के समय में दिखाई देता है। वहां एक ओर तो राजा लक्ष्मण सिंह काफी अंश में लल्लूलाल का अनुकरण करते हुए संस्कृत और ब्रज मिश्रित गद्य लिखते हैं जिसमें फारसी शब्दों का पूर्ण वहिष्कार सा ही है और यथासंभव न्यूनतम प्रयोग है और दूसरी ओर सितारे हिन्द अपना इतिहास तिमिर नाशक इतिहास ग्रन्थ ऐसी फारसीप्रधान भाषा में लिखते है, जो वस्तुतः उर्दू है पाकिस्तानी रूप में। यही स्वरूप विषयक विवाद कुछ अधिक संयत रूप में भारतेन्दु काल में मिलता है। उस समय भी भारतेन्दु मण्डली में कई लेखक तो ऐसे हैं, जो फारसी मिश्रित चुटीला गद्य लिखने के पक्ष में हैं और कई ऐसे हैं जो फारसी शून्य या उससे न्यूनतम मिश्रित संस्कृतमय गद्य के पक्ष में है। इसने आगे द्विवेदी काल में गद्य का रूप अच्छी तरह विकसित और व्यवस्थित हो जाता है। किन्तु फारसी-कृत शैलि-भेद अब भी विभिन्न लेखकों की भाषा में चलता ही रहता है। आज राष्ट्रीयता और स्वतन्त्रता के युग में इन्हीं दो रूपों का विवाद हिन्दी हिन्दुस्तानी के रूप में हमारे राजनैतिक नेताओं और विधान-निर्माताओं को परेशान कर रहा है। हिन्दी मे संस्कृत की प्रधानता और हिन्दुस्तानी में फारसी की प्रधानता, इन दोनों भाषाओं की विशेषताएं हैं। हर्ष का विषय है कि अब इस विवाद का पाकिस्तान बन जाने के पश्चात् अन्त होता नजर आ रहा है, क्योंकि नव विधान मे संस्कृत प्रधान हिन्दी रूप को ही राष्ट्र भाषा मान लिया गया है। यद्यपि यह पद हिन्दी को वस्तुतः मिलने में अभी १५ साल लगेंगे, पर फिर भी इस विवाद-ग्रस्त विषय का अन्त हो, एक सिद्धान्त निश्चित हो गया है जो शुभ सूचक है।

हिन्दी साहित्य के स्वाभाविक विकास-क्रम को समझने के लिए इस काल को चार भागों में बांट लिया जाता है। पहिला खड़ी बोली का आदि

काल है, जो भारतेन्दु से प्रथम तक है। यह जन्म काल माना जाता है, जब कि हिन्दी गद्य का रूपनिर्माण होकर वह समक्ष आता है। इस समय हिन्दी-गद्य-लेखन का केवल चलन मात्र होता है, इसमें साहित्य कोई विशेष नहीं लिखा जाता।

दूसरा युग भारतेन्दु का है, जो खडी बोली का शैशव-काल माना जाता है, जिसमे विविध विषयों में रचना कर उसके स्वरूप और साहित्य का पालन परिवर्द्धन और परिपोषण होता है। इसी काल में खडी बोली में पद्य-रचना का भी श्री गणेश हो जाता है और पर्याप्त पद्य साहित्य लिखा जाता है। यह काल द्विवेदी जी के काल तक चलता है। इस काल मे हिन्दी का क्षेत्र-विस्तार, विषय-विस्तार आदि होकर वह अपने यौवन मे पदार्पण करती है। यह यौवन काल उसका द्विवेदी युग होता है।

द्विवेदी काल मे खडी बोली की काट छाट, उसके व्याकरण और स्वरूप की व्यवस्था होती है। द्विवेजीजी सरस्वती पत्रिका चलाते है और उसमें विभिन्न लेखको की भाषाओ की आलोचना प्रत्यालोचना कर उसके व्याकरण आदि और कविता आदि के नियमों की व्यवस्था पर बल देते हैं। इसी काल में हिन्दी में अंगरेज़ी बगला मराठी गुजराती आदि से अनुवाद भी खूब होते हैं। अभिप्राय यह है कि अब इस काल में हिन्दी के साहित्य की वृद्धि के साथ २ उसके रूप में भी व्यवस्था स्थिरता और नियमितता आ जाती है। इस काल मे अनेक उच्चकोटि की मौलिक ग्रन्थ रचनाएं भी होती हैं।

चौथा काल नवीन काल या नवीन धाराएं (विकास काल) कहलाती है। यह काल हिन्दी का (खडी बोली का) पूर्ण यौवन-काल है, जिसमें उसका अनेक दिशाओं में स्वतन्त्र विकास होता है। काव्य की रहस्यवादी, छायावादी, प्रकृतिवादी, वस्तुवादी और प्रगतिवादी आदि काव्य-धाराएं चल पड़ती है। इस युग को वस्तुत: कवीन्द्र और गांधी-युग भी कहा जाता है। क्योंकि इस काल के हिन्दी साहित्य पर इन दोनों ही महापुरुषों की स्पष्ट छाप पडी है, जिसका प्रमाण छायावाद रहस्यवाद और चर्खा कर्घा गांव, अछूत और मजदूर आदि के वर्णन के रूप में स्पष्ट मिलता है। आज यह नवीन काल (विकास काल) ही चल रहा है।

प्रश्न गद्य प्रवर्त्तक या भारतेन्दु से प्रथम के मुख्य २ गद्य-लेखकों का संक्षेप में परिचय दो।

इन्शाअल्ला खां ये लल्लूलाल आदि के सम-कालीन थे। इनकी पैदाइश १८७५ में मुर्शिदाबाद में हुई। मुगल शासन के नष्ट होने पर ये वहीं चले आये थे। राज्य से वेतन बन्द हो जाने पर इन्होंने अन्तिम दिन बड़े कष्ट में गुजारे। इन्होंने ठेठ हिन्दी में उदय भान चरित या रानी केतकी की कहानी नामक एक गद्य कथा लिखी।

खुसरो के समान इन्होंने भी इरादतन शुद्ध हिन्दी लिखने का प्रयत्न किया। इनके समय में फारसी मिश्रित और संस्कृत आदि मिश्रित भाषा के दो रूप चालू थे। पहिला ऐसा था जो मुगल अफसर या अन्य फारसीदां ही बोलते थे, जिसमें स्वभावतः फारसी शब्द आ जाते थे और दूसरा ऐसा था जिसमें साधु सन्त नाथ वैष्णव या ईसाई पादरी आदि प्रचार कथा वार्ता आदि करते थे या अन्य जन साधारण हिन्दु समाज अपना कारो व्यवहार करता था। स्वभावत: उसमें फारसी शब्द नहीं होते थे। इनमें पहिले को हिन्दवी (फारसी मिश्रित हिन्दुओं या हिन्द की भाषा-निसबती ई फारसी प्रत्यय यही और अधिक फारसीकरण हुआ रूप वास्तव में उर्दू बना।) और दूसरे को भाखा कहते थे। इंशाअल्ला खां ने यह इरादा करके कि उसकी भाषा में "हिन्दवीपन भी रहे और भाखापन भी न आने पाये।" फलतः उन्होंने अपनी भाषा में संस्कृत और फारसी के तत्सम शब्दों का सर्वथा वहिष्कार रखा और अधिकतर चालू तद्भव शब्दों का प्रयोग किया। इस कार्य में उन्हें बहुत हद तक सफलता हुई और वे इन ऊपर कहे गुणों से युक्त, चटपटी मुहावरेदार चटकदार भाषा लिखने में सफल हुए, किन्तु न तो पूर्णतया संस्कृत शब्दों का वहिष्कार कर सके कर ही नहीं सकते थे और न फारसी के प्रभाव से ही वे पूर्णतया बच पाये, क्योंकि उनकी वाक्य-योजना और उनके अन्दाज पर फारसी का स्पष्ट प्रभाव है। किन्तु तो भी उस समय में उन्होंने गद्य का एक चुनीदा रूप उपस्थित किया। ईशाअल्ला खां के समय में ३ लेखक और भी हुए और तीनों ने गद्य लिखा। परन्तु सब के गद्य अपनी अपनी विशेषताएं लिये, भिन्न भिन्न; शैलि के हैं

और विभेद जितने स्पष्ट रूप से इस काल में नजर आता है उतना आगे आने वाले काल में नहीं जिसमें कि इन सब शैलियों के उचित सम्मिश्रण रूप एक आदर्श रूप की प्रतिष्ठा के प्रयत्न हैं। अस्तु, इंशाअल्ला खां को हिन्दी के प्रारंभिक काल में एक मुहावरेदार ठेठ खड़ी बोली गद्य लिखने वालों में अगुआ होने का स्थान प्राप्त है जिसका महत्व अन्यों से कम नहीं। एक नमूना —

'इस सिर झुकाने के साथ ही दिन रात जपता हूँ उस अपने दाता के भेजे हुए प्यार को।"

मुंशी सदा सुख लाल "नियाज"–ये भी इसी काल में थे। ये जाति के कायस्थ और दिल्ली के रहने वाले थे। पहिले ये कम्पनी के मुलाजिम थे, पर अन्त में रिटायर होकर भजन में लग गये। इन्होंने सुख सागर नाम से भागवत का स्वतंत्र हिन्दी अनुवाद किया, जिसका एक नमूना––

"इससे जाना गया कि संस्कारका भी प्रमाण नहीं आरोपित उपाधि है। जो क्रिया उत्तम हुई तो सौ वर्ष में चाण्डाल से ब्राह्मण हुए और जो क्रिया भ्रष्ट हुई तो वह तुरन्त ही ब्राह्मण से चाण्डाल होता है।"

कहना नहीं होगा, यह आधुनिक प्रचलित आदर्श साहित्यक गद्य का प्रारंभिक पर अच्छा सस्कृत रूप है। मु० सदा सुख लाल ने सन्त साधु समाज में प्रचलित और ईसाई पादरियों के द्वारा गृहीत "भाखा" को ही ग्रहण किया था, पर उसमें संस्कृत तत्सम शब्दों के उचित सम्मिश्रण और व्यवस्थित शैलि वाक्य योजना के बल से वे उसे हमारी आज की गद्य के बहुत नजदीक ले आये हैं। उन्होंने चालू मुहावरों का, कहावतों का भी कसम खाकर बहिष्कार नहीं किया है, बल्कि उनसे उचित सहायता ली है। सारांशतः मुंशी सदासुखलाल ने अपेक्षाकृत सुगठित और परिमार्जित गंभीर विषय के योग्य गद्य लिखी जो वस्तुतः आज की गद्य का मौलिक आदर्शता कही जा सकती है। अत एव मुंशीजी को सच्चे अर्थों में आधुनिक खड़ी बोली के प्रवर्तकों में सर्वोच्च स्थान दिया जा सकता है। इन्हें अपने समय का हम सर्वोत्कृष्ट गद्य लेखक भी कहें तो भी असंगत नहीं हो सकता।

लल्लू लाल ये भी इनके समकालीन थे। ये फोर्ट विलियम्स कौलिज कलकत्ता में प्रोफेसर थे। ये आगरा निवासी गुजराती ब्राह्मण थे। इन्होंने भी भागवत के दशम स्कन्ध का हिन्दी गद्य मे अनुवाद किया था जो प्रेम सागर नाम से मिलता है। किन्तु मुंशी सदा सुखलाल ने जहाँ अपनी स्वतंत्र प्रेरणा से स्वान्तः सुखाय यह पुण्य कृत्य किया था, वहां लल्लू लाल ने कालिज के प्रिंसिपल जॉन गिल क्राइस्ट के आदेश पर कालिज के कोर्स के लिए लिखा था। दोनों की भाषा में भेद है। अवश्य ही लल्लू लाल को मुंशी जी की भाषा मे भारीपन या संस्कृतमयता की अधिकता खटकी होगी—उन्होंने अपनी भाषा में इसी लिये संस्कृत को यथासंभव निकाला है और उसके स्थान में चालू व्रज भाषा के या अन्य देशी भाषाओं के फारसी के भी तद्भव शब्द भर दिये हैं, जिनके बीच २ में लोकोक्तियाँ मुहावरे और अन्य ऐसे ही चालू प्रयोग भी भरने की चेष्टा की है। परन्तु उनका प्रधान झुकाव व्रज भाषा की ओर है और वे इससे इतना प्रभावित हैं कि उनकी वाक्य योजनाएं भी व्रज भाषा जैसी हैं। वाक्य अधिकतर तुकान्त होते हैं। अनुप्रासों की भरमार है। वर्णन शिथिल हो गये हैं भाषा अव्यवहार्य हैं और उसमें चालुपन नहीं है और नाहीं गंभीरता है। कवित्व और वर्णन की दृष्टि से उनकी गद्य का चाहे जो भी महत्व हो किन्तु एक गद्य के नाते वह विफल रही है। उसमें प्रत्यय, क्रिया, सर्वनाम आदि तक भी अनेकत्र व्रजभाषा के आ गये हैं। लल्लू लाल जी के आदर्श वस्तुतः चौरासी वैष्णवों और दो सौ बावन वैष्णवों की वार्ताओं के लेखक थे। अतएव उनकी गद्य भी हिन्दी की अपेक्षा व्रजभाषा की गद्य के अधिक निकट है। इस रूप का आगे ग्रहण नहीं हुआ। तो भी अपने समय के एक विशेष शैली के गद्य लेखक होने के नाते इनका महत्व केम नहीं। इनका भी स्थान गद्य परिवर्तकों में माना जाता है, यद्यपि मुंशी सदासुख लाल से उतर कर। प्रेम सागर का एक उद्धरण

"जिस काल उषा १२ वर्षकी हुई तो उसके मुखचन्द्र की ज्योति देख पूर्णमासी का चन्द्रमा छवि छीन हुआ। बालों की श्यामता के आगे अमावस्या की अंधेरी फीकी लगने लगी। उसकी चोटी सटकाइ लखि नागिन अपनी केंचुली छोड़ सटक गई।........

लल्लू लाल की भाषा में कवित्व है, संगीत है, लोच है, चित्र मयता भी है, और वर्णन भी है, पर साथ ही अव्यवस्था है, शिथिलता है, प्रवाह नहीं है सामर्थ्य नहीं है, व्यवस्था नहीं है, शुद्धता नहीं है (शब्द और व्याकरण की) संक्षेप और गंभीरता नहीं है जो कि गद्य के उत्तम गुण होते हैं।

सदलमिश्र—ये भी उपर्युक्त तीनों लेखकों के समकालीन और लल्लूलाल जी के साथी फोर्ट विलियम कालिज के प्रोफेसर थे। इन्होंने भी लल्लू लाल जी के समान ही गिलक्राइस्ट साहब के आदेशानुसार गरुड़ पुराण के आधार पर नासिकेतोपाख्यान लिखा, जिसकी भाषा आपके ही, 'अब सं० १८३० में नासिकेतोपाख्यान' को कि जिसमें चन्द्रावती की कथा है, देववाणी से कोई कोई समझ नहीं सकता, इसलिए खड़ी बोली में किया है।' इस कथन के अनुसार खड़ी बोली है।

इनकी भाषा लल्लू लाल से अधिक परिमार्जित और आज की खड़ी बोली के अधिक निकट है। इन की वाक्य योजना और भाषा ब्रजभाषा से उतनी प्रभावित नहीं। न ब्रज भाषा के शब्दों की उतनी भरमार है। मुंशी सदासुख लाल की अपेक्षा संस्कृत का इन्होंने कम प्रयोग किया और उसकी पूर्ति तद्भव शब्दों से कर ने की चेष्टा की है। मुहावरों, कहावतों, चालू प्रयोगों का प्रयोग किया है। भाषा में गठन और चलाउपन भी है। इसकी भाषा आज की खडी बोली गद्य का एक प्रारंभिक रूप है, पर वह इतना शुद्ध और संस्कृत नहीं जितना मुंशी सदासुख लाल की गद्य का, जो कि आज की एक अच्छी साहित्यिक गद्य भाषा की तुलना में आ सकती है। स्थान स्थान पर उसमें पूर्वी के शब्द भी आये हैं जो प्रेम सागर की भाषा में नहीं। तो भी, उन्होंने उस समय हिन्दी गद्य या खड़ी बोली गद्य का एक व्यवस्थित, सरल व्यवहार्य और सर्वसाधारण—ग्राह्य रूप उपस्थित किया, जिसके लिए इनका खड़ी बोली के गद्य प्रवर्तकों में स्थान स्थायी है।

प्रश्न—१६ वीं सदी के इन ऊपर उक्त चार गद्य प्रवर्तकों की शैलियों का खड़ी बोली के विकास में संक्षेपतः मूल्य निर्धारण करो।

उपरोक्त इन्शाअल्ला खां, सदासुख लाल, लल्लू लाल और सदल मिश्र ये चारों लेखक खड़ी बोली के गद्य प्रवर्तक माने जाते हैं। इनमे प्रथम हिन्दी गद्य दो तीन रूपों में मिलती थी

(१) भाखा रूप, जिसमें संस्कृत शब्दों का बाहुल्य था और जो वस्तुतः व्रज भाषा गद्य थी, (२) उर्दू रूप, अर्थात् देश भाषा (दिल्ली आगरा मेरठ के आस पास की भाषा) के ढांचे में फारसी शब्दों की भरमार कर के जो भाषा मुगल कोर्ट और दरबार मे बोली जाती थी, (३) हिन्दी के दोनों के मध्यवर्तिनी या वह भाषा जो आम लोगोंकी बोली थी, उसमे संस्कृत शब्दो के स्थान में तद्भव शब्दों का अधिक प्रयोग था, फारसी का भी बहिष्कार नहीं। उनमें पहिले रूप का उदाहरण वैष्णवो की वार्ताओ की भाषा को, दूसरे का, उर्दू लेखकों के साहित्य कों और तीसरे का खुसरो, कबीर आदि की भाषा को ले सकते हैं।

इन चार सदासुख लाल प्रमुख चार गद्य प्रवर्तक लेखकों ने अपने अपने उद्देश्य के अनुसार इन ऊपर कही समस्त शैलीयों में से कुछ की सुधार परिस्कार के साथ किसी न किसी को अपना कर अपनी अपनी शैली निश्चित की। मुंशी सदासुख लाल ने स्वतन्त्र प्रेरणा से स्वतंत्र विषय पर स्वान्तः सुखाय लिखा था उन्होंने अपनी भाषा का विषयानुरूप स्वाभाविक निर्माण होने दिया। फलतः उसमें विषयानुरूप संस्कृत का आधिक्य रहा, जिससे वह अधिक सुगठित, परिमार्जित और आज के साहित्यिक गद्य के अधिक निकट हो गई है। लल्लू लाल और सदल मिश्र ने अन्य के आदेश पर एक विशेष उद्देश्य--शिक्षा कोर्स--के लिए लिखा था, जिसके लिए भाषा अधिक सुगम होनी चाहिए थी। उन दोनों ने संस्कृत के त्याग से और अन्य तद्भव शब्दों के ग्रहण से सुगमता लाने की चेष्टा की। किन्तु उन दोनों में से लल्लू लाल व्रज भाषा के प्रवाह में वह गये और अपनी भाषा का रूप भूल गये। इन्होंने यथा संभव संस्कृत शब्द नहीं आने दिये हैं। सदल मिश्र ने भी संस्कृत का यथा संभव परिमित उपयोग किया है, पर उनकी भाषा पर पूर्वी का प्रभाव आ गया है। पूर्वी शब्दों और क्रियापदों का भी प्रयोग है। इन्शाअल्ला खा ने ऐसी शैली रखी जो ठेठ तद्भव शब्दों वाली भाषा है। उसमें संस्कृत और फारसी शब्दो

का वाहिष्कार सा है। उनका प्रयोग है भी तो उनको बिगाड़ कर उनका तद्भव रूप बना कर।

सारांशत. इन सब में मुंशी सदासुख लाल को छोड़ कर अन्य किसी की भी शैलि आधुनिक खड़ी बोली के गद्य का पूर्णतया आदर्श नहीं बन सकती। उन सब मे कुछ न कुछ अव्यवहारिकता है। फलतः मुंशी सदासुख लाल का इन चारो गद्य प्रवर्तको में प्रमुख स्थान है।

प्रश्न राजा शिव प्रसाद सितारे हिन्द और राजा लक्ष्मण सिंह का परिचय दे कर दोनों की शैलियो का अन्तर स्पष्ट करिये।

उत्तर इन दोनों लेखकों से वस्तुत: वीसवी सदी का साहित्य प्रारंभ होता है। ये दोनों महानुभाव और इनके साथ कुछ एक अन्य छोटे मोटे सज्जन वस्तुतः लल्लू लाल आदि के और भारतेन्दु के युगों के बीच की कड़ी हैं। इनमें से प्रथम सितारे हिन्द का नाम आता है।

राजा शिव प्रसाद सितारे हिन्द ये १८८७ १८९६ तक के काल मे थे। इन्होंने प्रथम बनारस से, बनारस अखबार निकाला और बाद में जब ये स्कूल इंस्पैक्टर हो गये, तो इन्होंने छोटी मोटी स्कूल की पाठ्य पुस्तकें लिखीं। इनकी भाषा शुद्ध सरल सस्कृत गर्भित सदासुखलाल या सदल मिश्र के नमूने की थी। परचात् इनका मत बदल गया और ये आमफहम ऐसी भाषाके पक्षपाती हो गये जिस मे सब भाषाओं, विशेषत. फारसी, के प्रचलित शब्दों का प्रयोग हो। दूसरे अर्थ मे ये ऐसी भाषा के पक्षपाती थे और ऐसी दलीलें उसके लिए देते थे जैसी कि आज की हिन्दुस्तानी है और जैसी कि दलीलें हिन्दुस्तानी के पक्षपाती देते है। परिणाम भी दोनों का एक जैसा ही रहा। अर्थात् राजा साहब ने इन विचारों के वशी भूत होकर जब आगे अपना इतिहास तिमिरनाशक नामक ग्रन्थ लिखा तो उसमें खड़ी बोली या आमफहम हिन्दी के नाम मे क्लिष्ट उर्दू लिख के रखदी। आज के हिन्दुस्तानी के साहित्य का भी उर्दू रूप सभी जानते हैं। अस्तु, राजा साहब अपने समय के हिन्दीके महान् पक्षपाती और उन्नायक थे। हिन्दी साहित्य पर उनका अपार आभार है। उन्होंने उसके प्रचार और विस्तार में पूरा जोर लगाया। उनकी भाषा का नमूना.- "हम लोगों को जहां तक बन पड़े चुनने में उन शब्दों को

लेना चाहिये, जो आम फहम और खास-पसन्द हों अर्थात् कि जिन को ज्यादा आदमी समझ सकते हैं और जो यहां के पढ़े लिखे आलिम फाजिल, पण्डित विद्वान् की बोल चाल में भी छोड़े नहीं गये हैं... ।"

विचार हिन्दुस्तानी वालों से मिलते जुलते हैं और इन दोनों विचारों से प्रेरित होकर लिखने से परिणाम उर्दू ही निकला। राजा साहब ने हिन्दी का प्रचार किया। उसे शिक्षा में रिकनाइज कराया, पाठ्य पुस्तकें लिखीं-लिखाईं, जिसके लिए हिन्दी पर उनका उपकार है। पर उनका भाषा-विषय सिद्धान्त हिन्दी के लिए खतरनाक था—क्योंकि इससे हिन्दी प्रचार की अपेक्षा उर्दू प्रचार की ही अधिक संभावना थी। अत एव इनके प्रतिद्वन्द्वी स्वरूप हमें इसी काल मे राजा लक्ष्मण सिंह मिलते हैं।

राजा लक्ष्मण सिंह ये सितारे हिन्द राजा शिव प्रसाद के सिद्धान्त के प्रतिकूल थे। फारसी शब्दों के विरोधी नहीं थे, बशर्ते कि वे खूब चालू हों और उनका हिन्दीकरण हो गया हो, पर खड़ी बोली में ये प्रधानता संस्कृत को ही देना चाहते थे। ये वस्तुत. सदा सुख लाल के आदर्श के अनुयायी थे और उसे शुद्ध संस्कृत-आश्रित रखने में कल्याण समझते थे। राजा शिवप्रसाद भाषा में उदारता पूर्वक अन्य भाषाओं के विशेषत: फारसीके शब्दों को मिला कर उसे आम फहम (अर्थात् जिसे मुसलमान भी व्यवहार में ला सकें) बनाकर उसका कोष और क्षेत्र बढ़ाना चाहते थे, पर उनके इस मत में हिन्दी के अपने स्वतंत्र व्यक्तित्व के विनाश की संभावना थी। उधर राजा लक्ष्मण सिंह हिन्दी को बाह्य प्रभाव से अन्य फारसी आदि विदेशी भाषाओं के प्रभाव से दूर संस्कृताश्रित रख कर ही उसका स्वरूप-रक्षा समझते थे। किन्तु इस मत में, संकुचित सीमा में रह कर हिन्दी के स्वाभाविक विकास में बाधा उपस्थित होने का डर था। अस्तु अपने अपने सिद्धान्त के अनुसार दोनो ने ही दो शैलियां अपनाईं। राजा लक्ष्मण सिंह ने प्रजा हितैषी एक अखबार चलाया, रघुवंश के कुछ भाग का खड़ी बोली मे पद्यानुवाद किया और कालि दास के शकुन्तला का अनुवाद किया। इनकी भाषा संस्कृत प्रधान खड़ी बोली है। दोनों भाषाओं में भेद बताते हुए आपने रघुवंश की भूमिका में लिखा है, "हमारे मत में हिन्दी और उर्दू दो बोली न्यारी न्यारी हैं।

दत्तचित्त लो । प्रतीत होते हैं । गद्य में दुनियां भर के विषय लिखने के प्रयत्न किये गए उनमें, काव्य, नाटक, कृषि, कला, मनोविज्ञान, अर्थ शास्त्र, राजनीति, इतिहास, विज्ञान आदि सब हैं । भारतेन्दु जैसे विशिष्ट व्यक्तियों ने मौलिक भी लिखा और अन्य बंगला, संस्कृत आदि से अनुवाद भी किया। बहुतसों ने अनुवाद ही किए । अनेक समाचार पत्र निकले— उनमें समाचारों के साथ छोटे मोटे विभिन्न विषयों पर निबन्ध भी होते थे, जो इतने सुन्दर होते थे कि, विद्वानों की राय है, उतने बाद के समय में भी नहीं लिखे गये । इस समय बंगला और अंगरेज़ी के ढंग पर गजलें लिखी गईं, उपन्यासों की तो परम्परा ही चल पड़ी । अन्य भाषाओं से भी ढेरों अनुवाद हुए । गद्य का रूप निखर कर वह अब सभी विषयों के लिखने में समर्थ होती जा रही थी । किंतु कविता इस काल में भी प्रधानतया ब्रजभाषा में ही हुई । कारण खड़ी बोली में उस समय इतनी स्पष्टता सामर्थ्य नहीं आई थी कि वह कविता के क्षेत्र में भी उतनी सफलता से सूक्ष्म भावों की अभिव्यक्ति में सफल हो सके उसको छंद के ढाचे में बिठाना बड़ा कठिन था । पर फिर भी खड़ी बोली में पद्य रचना प्रारम्भ हो गई थी । कवि लोग संस्कृत छन्दों में संस्कृत के व्याकरण के आधार पर समासों से काम लेकर हिन्दी गद्य को फिट बैठा लेते थे । इस प्रकार गद्य और पद्य की भाषा एक करने के लिए प्रयत्न हो रहे थे । सारांशत: भारतेन्दु के समय की साहित्यिक प्रगति को हम निम्न शीर्षकों में बाँट सकते हैं:

१ विवाद-ग्रस्त खड़ी बोली के रूप को अनेक शैलियो की दलदल में से निकाल कर, उन शैलियों के निष्कर्षभूत आदर्श रूप में उसकी प्रतिष्ठा हुई । हिन्दी गद्य का एक साहित्यक रूप स्थिर हुआ ।

२ विषयानुरूप अनेक शैलियां लिखने का प्रचालन और विकास अर्थात् गम्भीर विषय के लिए गम्भीर संस्कृत गर्भित और सहज साधारण विषय के लिए साधारण बोलचाल की सरल शैलि का ग्रहण करना आदि ।

३ साहित्य के विभिन्न अगों की पूर्ति हुई । ढेरों उपन्यास लिखे गये, कहानियां लिखी गईं, जो सामाजिक, ऐतिहासिक, धार्मिक, जासूसी, तिलस्मी वैज्ञानिक आदि हैं । मौलिक लेखन भी हुआ और अनुवाद भी । काव्य लिखे गये,

खड़ी बोली में भी और ब्रजभाषा में भी। संस्कृत बंगला आदि के काव्यों का भी अनुवाद हुआ। आलोचना की प्रणाली चली। छोटे छोटे लेखों में, बड़े बड़े लेखों में विभिन्न विषयों की पुस्तकों की तर्कपूर्ण परिमार्जित ढंग की आलोचना होती थी। जीवन चरित्र लिखे गये। कवियों के इतिहास भी भिन्न भिन्न निबन्धों से लिखे गये। वैसे भी इतिहास लिखने की परिपाटी चली। नाटक लिखे गए जिनमें अनेक संस्कृत, बंगला मराठी के अनुवाद हैं और अनेक मौलिक भी हैं। इनके अतिरिक्त हास्य, शृंगार, वीर, रौद्र आदि सब रसों और विविध विषयो पर रचनायें हुई। धर्म, नीति, राजनीति राष्ट्रीयता, देश विदेश, विज्ञान, गणित, आदि अनेक विषयो को इस समय हिन्दी में स्थान देने के प्रयत्न हुए, जिससे साहित्य का विस्तार हो।

४ हिंदी-प्रचार, अनेक संस्थाओं द्वारा, अखबारों द्वारा, विभिन्न गोष्ठियों द्वारा, राजनैतिक शिक्षा विभागों द्वारा, सम्मेलनों द्वारा आदि।

संक्षेप में, यह काल हिन्दी का शैशव काल है, जिसमे उसका रूप और उसके अग पुष्ट होते हैं और उचित मात्रा में होते हैं।

प्रश्न भारतेन्दु काल के मुख्य गद्य लेखकों का संक्षिप्त विवरण दो।

उत्तर—अपने समय के गद्य लेखकों में भारतेन्दु सर्व प्रमुख हैं। उनकी प्रेरणा से या उनके आदर्श पर ही प्रायः अन्य सब चलते हैं।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र काल १९०७=१९३६। ये काशी के एक रईस घर में पैदा हुए थे। छोटी आयु में ही इनकी माता और लगभग १२ वर्ष की अवस्था में इनके पिता का देहान्त हो गया। इनकी कालिजी शिक्षा अधूरी रही। ये एक बार अपने कुटुम्ब के साथ जगन्नाथपुरी गये तो वहां बंगला जो कि अंग्रेजी के ज्ञान से खूब उन्नति कर रही थी को देखकर इनको अपने हिन्दी साहित्य की हीनता खटकी। इन्होंने उधर से लौटकर हिन्दी के लिए अपना सारा बल लगा दिया। ये बहुत रसिक जीव थे। संगति के प्रभाव में ऐयाश हो गये—कर्जा हो गया। उदार और दानी भी पूरे थे। कभी किसी को वापिस नहीं किया। विद्यार्थियों, लेखकों, कवियों और निर्धनों की सहायता करते रहते थे। बड़ा कर्जा हो गया। अन्तिम दिन इन्होंने मुश्किल

में गुजारे। इनका स्वास्थ्य भी खराब हो गया और अन्त में ३५ साल की ही आयु में आप का देहान्त हो गया।

इतने अल्पकाल में ही आपने हिन्दी की जो सेवा की वह अनुपम है। इन्होंने स्वयं साहित्य लिखा और औरों को प्रेरणा देकर लिखवाया। भाषा के आदर्श रूप की स्थापना की। हिन्दी साहित्य की वृद्धि के लिए सिर तोड़ प्रयत्न किया। ये वस्तुतः युग पुरुष थे। अपने समय की प्रधान चालक शक्ति थे। इन्होंने बनारस बनारस से दैनिक, कवि वचन सुधा मासिक, हरिश्चन्द्र मैगजीन, बाला बोधिनी पत्रिका निकाली। अनुवादों में सर्व प्रथम बंगला से विद्या सुन्दर नामक नाटक का अनुवाद किया। इसके पश्चात् आपने संस्कृत नाटकों का भी अनुवाद किया। स्वतन्त्र रचनाएं की। त्रिविध विषयों पर लिखा। लेख, कविता, कहानी, नाटक सभी कुछ लिखे। नाटकों मे इन्होंने पद्यानुवाद तो ब्रज में किया है पर अन्य सब खड़ी बोली गद्य में। खड़ी बोली में भी इन्होंने पद्य रचना की है।

इनकी भाषा आदर्श रूप थी, जिसमे संस्कृत प्रधान थी, पर फारसी का भी उचित संमिश्रण था। मंजी हुई, परिष्कृत, सारगर्भित, व्यंग्य पूर्ण गंभीर भाषा आप सामान्यतः लिखते थे। पर विषय के अनुसार ये अपनी शैली बदल देते थे। कटु आलोचनाओं के लिए आप तीखी फारसी-गर्भित मुहावरेदार भाषा लेते थे, वर्णनात्मक या अन्य ऐसे ही सुबोध विषय के लिए सरल सीधी प्रसाद-पूर्ण लिखते थे और गंभीर दार्शनिक विषयों पर आप परिष्कृत संस्कृतमय गंभीर भाषा में लिखते थे। आपको सभी शैलियों पर पूर्ण अधिकार था।

आप आचार्य थे, कवि थे, नाटककार थे, कहानीकार थे, सम्पादक थे, गद्य निर्माता थे और अपने समय के सब से बड़े साहित्यिक सुधारक और प्रेरक थे। देशी विदेशी की भावना, राष्ट्रीयता की प्रथम पुकार, अंग्रेजी साम्राज्य और शिक्षा दीक्षा के प्रति असन्तोष हिन्दी साहित्य में प्रथम इन्हीं की कलम से आते हैं। आप न प्राचीनता के पक्षपाती थे और न नवीनता के विरोधी। उन दोनों का समन्वय आपकी रचनाओं में मिलता है। आपने प्राचीन पद्धति को नवकाल में तदनुकूल रूप देकर प्राचीनता और नवीनता का

संयोग किया। आपके पश्चात् जो नवीन युग आया और आप से पहिले जो प्राचीन युग गया आप उन दोनों के बीच की सुन्दर कड़ी थे।

आपने नाटक मण्डलियां, कवि समाज, स्कूल, विद्यालय आदि हिन्दी प्रचार को चलाये। एक मण्डली बनाई जिसमें अनेक गण्यमान्य लेखक थे। आप उनसे परिवारित समस्त जीवन भर हिन्दी के लिए प्रयत्न करते रहे। हिन्दी को आपने जो कुछ दिया वह अमर है आपका यश सर्वदा साहित्य और भाषा के निर्माताओं में अक्षुण्ण बना रहेगा। आपके ग्रन्थ वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति, कर्पूर मंजरी, सत्य हरिश्चन्द्र, चन्द्रावली, भारत दुर्दशा, अंधेर नगरी, नील देवी आदि हैं।

प्रताप नारायण मिश्र ये भारतेन्दु के समकालीन उनकी मित्र मण्डली के सदस्य थे। ये अधिकतर हास्य लिखते थे। अतः इनकी शैलि भी चटखदार, व्यंग्य पूर्ण, फारसी और अरबी का रंग लिए, लोकोक्ति और मुहावरों से युक्त होती थी। उदाहरण "एक हमारे उर्दुदां मुलाकाती मौखिक मित्र बनने की अभिलाषा से आते जाते थे।"

बालकृष्ण भट्ट ये भी भारतेन्दु मण्डली के पण्डित विद्वान् ब्राह्मण थे। इन्होंने हिन्दी प्रदीप निकाला जिसमें सामाजिक साहित्यिक राजनैतिक आदि विषयों पर गद्य में लेख रहते थे। आपकी भाषा भी प्रताप नारायण मिश्र की तरह थोड़ी पूर्वी है। अलंकारों का प्रयोग है। शैलि आपकी भी विनोदपूर्ण व्यंग्यपूर्ण चुभती हुई होती थी।

बदरीनारायण चौधरी प्रेमघन ये भी उसी काल के लेखक हैं। इन्होंने आनन्द कादम्बिनी नामक साहित्यिक मासिक पत्र निकाला। आपकी भाषा में संस्कृत शब्दों की प्रचुरता अलंकारों की छटा रहती थी। साहित्य समालोचना का प्रारम्भ अपने पत्र में प्रथम आपने ही किया था। उदाहरण, "ईश्वर का भी क्या खेल है कि कभी तो मनुष्य पर दुःख की रेल पेल और कभी उसी पर सुख की कुलेल।" आदि।

श्री निवासदास—ये नाटक-लेखक और उपन्यास लेखक भी थे। इन्होंने तपसी संवरण, संयोगिता स्वयंवर और रणधीर मोहिनी नाटक और परीक्षा गुरु नामक उपन्यास लिखे। ये गंभीर लिखते थे। इनमें मिश्र जी या

भट्ट जी जैसा विनोदीपन नहीं है। भाषा संस्कृत गर्भित, परिष्कृत और संयत है।

अम्बिकादत्त व्यास--ये संस्कृत के अद्भुत पण्डित थे। इन्होंने शिवराज विजय नाम संस्कृत में शिवाजी का चरित-रूप आधुनिक ढंग का उपन्यास लिखा है। ये आशुकवि थे और बचपन से ही सुन्दर कविता करते थे। हिन्दी पर भी आपको पूरा अधिकार था। ये संस्कृत गर्भित, समासों वाली, लम्बे २ वाक्य वाली संयत और विशद भाषा लिखते थे। हिन्दी में इन्होंने पहिले पीयूष प्रवाह नामक समाचार पत्र निकाला। ललिता गो सकट नामक नाटक लिखे। गद्य मीमांसा नामक भाषा पर एक विवेचनात्मक ग्रन्थ लिखा। अवतार मीमांसा, मूर्त्तिपूजा आदि सनातन धर्म के ग्रन्थ लिखे।

विषय के अनुरूप आप भी भाषा बदलते थे। आलोचना और तर्क की और गंभीर विवेचन की और। साधारण शैली में आप फारसी शब्दों लोकोक्तियों और मुहावरों से सहायता लेते थे। अलंकारों का विधान करते थे। उदाहरण, "जिस लड़के को कुर्ते में घुण्डी तक लगाना नहीं आता और पाखाने से आ हाथ धोना तक नहीं आता, उस लड़के के विशुद्ध दुग्ध के फेन के ऐसे कोमल हृदय में यूरोप और अमेरिका की खेती की जाती है।"

बालमुकुन्द गुप्त — ये भारतेन्दु के मित्र और हास्य के अनुपम लेखक थे। इनके शिव शंभु के चिट्ठे प्रसिद्ध हास्य के ग्रन्थ हैं। इनकी शैली, चटकदार, व्यंग्य पूर्ण, चुभती हुई मुहावरेदार होती थी। इन्होंने बंगवासी और भारत मित्र नामक दो पत्र भी निकाले थे।

प्रश्न भारतेन्दु के पश्चात् के या द्विवेदी काल के गद्य के विषय में एक संक्षिप्त नोट लिखो।

उत्तर भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र के पश्चात्, दूसरे युग में श्री महावीर प्रसाद द्विवेदी होते हैं, जिनका प्रभाव अपने समय की समस्त गति विधि पर स्पष्टरूपेण पड़ा। इन्होंने असंख्य लोगों में हिन्दी के प्रति आदर उत्पन्न किया, असंख्य कथित लेखकों को पद्धति सिखाकर वस्तुतः लेखक बनाया, और अनेक इस पथ में अग्रसरों को मार्ग दिखाया। भारतेन्दु युग का प्रधान लक्ष्य जहां हिन्दी में समन्तात् उत्पादन बढ़ाने का था, वहां उसके बाद के युग

द्विवेदी युग का प्रधान लक्ष्य हिन्दी में समन्तात् विधान, व्यवस्था, परिष्कार और स्थैर्य का था। इस सारे युग की केन्द्र भूत शक्ति द्विवेदी जी थे। इन्होंने सरस्वती के द्वारा आधुनिक युग के पथ-प्रदर्शक और विधान निर्माता आचार्य का कार्य अनवरत सफलता पूर्वक किया। सरस्वती में जहां विविध विषयों पर उत्तम लेख निबन्ध आदि और साहित्य के विविध अंगों कविता नाटक कहानी आदि की रचनाएं होती थीं वहां भाषा विषयक आलोचना, खण्डन मण्डन भी विशेष रूप से उस समय रहते थे। उनके समय में भाषा का प्रामाणिक व्याकरण लिखा गया। व्याकरण के लेखकों में कामता प्रसाद गुरु का नाम अग्रणी रूप में आता है। उपन्यास बढ़िया से बढ़िया लिखे गये मौलिक और अनुवाद रूप भी। मौलिक उपन्यासकारों और महान् गद्य लेखकों में इस समय के प्रेमचन्द का और अनुवादकों में पं० रूप नारायण पाण्डे का नाम सर्व प्रथम स्मरणीय है। कहानी कारों में, प्रसाद, कौशिक, प्रेमचन्द जैसे योग्य गद्य लेखक हुए। नाटककारों में भी अच्छे अच्छे नाटककार हुए। साथ ही साहित्य विषयक खोज की ओर प्रयत्न हुए। बनारस में बाबू श्यामसुन्दर दास और शुक्ल जी जैसे विद्वान् आचार्यों के सहयोग से काशी नागरी प्रचारिणी सभा और एक पत्र की स्थापना हुई। इस संस्था ने प्राचीन हिन्दी साहित्य का अन्वेषण सम्पादन और प्रकाशन जितने प्रामाणिक और सुचारु रूप से किया है वह अमूल्य है। इस संस्था से शुक्ल जी, बाबू श्यामसुन्दर दास जी, द्विवेदी जी, दीन जी, उपाध्याय जी जैसे महामान्य व्यक्तियों का सहयोग रहा है। इसी काल में सर्व प्रथम मिश्र बन्धुओं ने हिन्दी कवियों की आलोचना और उनका ऐतिहासिक परिचय लिखने का कार्य प्रारम्भ किया और बादमें कई प्रामाणिक इतिहास लिखे गये। इन सब के साथ ही विज्ञान, राजनीति, इतिहास, व्यापार, देश, विदेश आदि विषयों पर बड़े विस्तृत परिमाण में साहित्य लिखा गया और साहित्य रचना की बाढ़ सी आ गई। पत्र पत्रिकाओं का अन्त नहीं रहा। पुस्तक प्रकाशन का तांता लग गया। गद्य का रूप अब मंजकर, निखर कर और व्यवस्थित होकर सम्पूर्ण बन गया था, और खड़ी बोली का इस समय क्या गद्य और क्या पद्य दोनों क्षेत्रों में एकाधिकार हो गया था। अब उसके विकास का काल था, जब उसमें

भिन्न २ लेखकों की भिन्न २ विशेषताओं के लिये शैलियों का विकास हो रहा था।

स्पष्ट ही इस सारी प्रगति के प्रधान संचालक द्विवेदी जी ही थे। इस युग की मुख्य प्रेरणा ये ही थे। इस काल के साहित्य का और उसमें उस काल में वर्तमान प्रवृत्तियों का वर्णन वस्तुतः द्विवेदी जी या उनकी पत्रिका सरस्वती के इतिहास का वर्णन है। उनका हिन्दी साहित्य और गद्य पर उस समय ऐसा ही सर्वव्यापी प्रभाव पडा था।

उनका युग गद्य का यौवन काल है, जब वह सर्वाङ्ग परिपुष्ट हो, निखरे हुए परिमार्जित अभिनव मधुर रूप में उपस्थित होती है और उसका अपने पूर्ण सौन्दर्य को प्राप्त होने के पश्चात् आगे चलकर अनेक भङ्गियों-शैलियों में विकास होता है।

प्रश्न भारतेन्दु के पश्चात् के कुछ-एक प्रधान लेखकों का संक्षिप्त परिचय दो।

आ० महावीर प्रसाद द्विवेदी जन्म काल १९२१। ये अपने समय के साहित्यिक युग पुरुष थे। इन्होंने इलाहाबाद से सरस्वती मासिक पत्रिका निकाल कर हिन्दी के प्रचार और उत्थान का प्रयत्न प्रारम्भ किया था और आजन्म उसे घाटे में भी चला कर निभाते रहे। द्विवेदी जी और उनकी पत्रिका का इतिहास वस्तुतः अपने काल का साहित्यिक इतिहास है। ये अपने काल की संचालक शक्ति थे। इनके प्रयत्न हिन्दी में—भाषा में और साहित्य में भी—विधान व्यवस्था की ओर रहे। इन्होंने छोटे २ व्याकरण विषयक लेख लिखे, अनेकों की भाषा में दोष निकाले, आलोचना की और लेखकों का शुद्ध परिमार्जित और व्याकरण-सिद्ध भाषा लिखने की ओर ध्यान आकृष्ट किया। साथ ही भाषा में कौमा पाई आदि विराम चिन्हों के प्रयोग की व्यवस्था की। इस रूप में ये हिन्दी गद्य के सर्व प्रमुख विधान निर्माता व्यवस्थापक ठहरते हैं।

ये कवि भी थे। इन्होंने व्रज और खडी बोली में कविता लिखी। एक कुशल और आकर्षक निबन्ध लेखक भी थे। इन्होंने अनेक छोटे मोटे विज्ञान से लेकर, भाषा साहित्य, घरेलू विषयों तक पर सुन्दर निबन्ध लिखे।

संस्कृत मराठी और अंग्रेज़ी से अनुवाद किये, पद्य रूप में और गद्य रूप में भी। कहानियां भी लिखीं। उनके काव्य में संस्कृत वृत्त रहते थे और काव्य-सरणि के अनुसार अलंकार आदि की व्यवस्था दोनों में होती थी। किन्तु सर्वाधिक वे आचार्य थे। हिन्दी गद्य निर्माताओं में उनका नाम अमर है। गद्य लिखने में उन्हें भी भारतेन्दु के समान कई शैलियों पर पूर्ण अधिकार था, जिनका उपयोग वे अपनी पत्रिका में विभिन्न विषयों के अनुरूप करते थे। उनकी किसी गंभीर विवेचन की अलग शैली होती थी, जो उतनी ही उच्च और गंभीर संस्कृतरूप अधिक लिये होती थी। साधारण दैनिक विषयों पर लिखने की उनकी अलग प्रवाह-पूर्ण सरल, छोटे छोटे वाक्यों वाली, संतुलित शैली होती थी। इन दो के अतिरिक्त उनकी एक शैली और भी थी, जिसमें वे अपने किसी विरोधी या विवादी की खबर लेते थे, या किसी की कटु आलोचना करते थे। इसमें, तीखापन, और व्यंग्य की मात्रा अधिक रहती थी। उनका इस प्रकार का समस्त साहित्य सरस्वती की फाइलों के रूप में संग्रहीत है।

ये एक शुद्ध भारतीय साहित्य के तपस्वी थे, जिन्हों ने जीवन भर कष्ट में रह कर निःस्वार्थभावेन अपनी विद्वत्ता और अथक परिश्रम से हिन्दी भारती की सेवा की। ऐसी ही जैसी महान् तपस्याओं के परिणामस्वरूप आज हिन्दी अपने आज के पद पर आसीन है।

मु० प्रेमचन्द हिन्दी उपन्यासकारों में इन को सम्राट् माना जाता है। ये प्रथम उर्दू में लिखते थे, किन्तु द्विवेदी काल के प्रभाव में ये भी हिन्दी की ओर मुड़े। प्रथम इन्हों ने हिन्दी में कहानीकार के रूप में नाम पाया। असंख्य कहानियां लिखीं जिनके संग्रह प्रकाशित हैं। पश्चात्, उपन्यास लिखना आरम्भ किया तो, वरदान, निर्मला, कायाकल्प, प्रेमाश्रम, रंगभूमि कर्म-भूमि आदि उपन्यासों का तांता लगा दिया और उत्तरोत्तर एक से एक बढ़ कर ऐसी रचनाएं हिन्दी को दीं, जो किसी भी बड़े से बड़े साहित्य की मौलिक रचनाओं का मुकाबला कर सकती हैं। इन्होंने कर्बला आदि नाटक भी लिखे। अंग्रेज़ी और उर्दू से अनुवाद भी किये।

इनकी भाषा पर इन्हें पूर्ण स्वत्व और अधिकार था और इन्होंने मनचाही

कलम चलाई। इनके उपन्यासों में भिन्न भिन्न प्रसंगों पर उन के अनुसार ही भाषा का प्रयोग किया है। कथोपकथन में, व्याख्यान में इन्होंने पात्रानुरूप अपनी शैली बदल दी है, जिससे पात्रों की भाषा-गत विशेषता स्पष्ट रहती है। आम तौर पर इनकी शैली संस्कृत, फारसी, अंग्रेज़ी और तद्भव शब्दों से युक्त भाषा से सरल, सुबोध और व्यञ्जना-पूर्ण होती थी। आप अपने समय के सर्वोत्कृष्ट उपन्यास और कहानी के लेखक थे।

पं० विश्वम्भर नाथ शर्मा कौशिक--जन्म सं० १९४८ स्थान पञ्जाब। ये बहुत प्रारम्भ से कहानियां लिखते हैं। इनके कई संग्रह छप चुके हैं। ये आदर्श कहानीकार माने जाते हैं। इन्होंने अधिकतर सामाजिक कहानियां लिखी हैं। भाषा इन की परिमार्जित और सरल सुबोध होती है।

श्री सुदर्शन जन्म १९७०। ये भी आदर्श कहानीकार हैं। इनकी असंख्य कहानियां हैं। इनके भी पात्र अधिकतर सामाजिक होते हैं। कुछ एक कहानियां इन्होंने राजनैतिक भी लिखी हैं। ये उत्कृष्ट गद्य लेखक हैं।

पाण्डेय बेचन शर्मा उग्र--जन्म १९५८। इन्होंने जब साहित्य में कहानीकार और छोटे छोटे उपन्यास लिखने प्रारम्भ किये थे तो धूम मचा दी थी। कहानी लिखने की, वर्णन करने की एक नयी शैली लेकर आये थे। इनकी समस्त रचनाओं में अनोखा कटीलापन था। ये कवि, कहानीकार, उपन्यासकार और नाटककार हैं। इनके साहित्य में। अधिकतर इन्होंने सामाजिक कुरीतियों और संकीर्ण विचारों का या समाज के घृणित रूपों का चोट करता हुआ चित्र खींचा है। इसी लिए इन के साहित्य में अश्लील अंश अधिक आ जाने से, वह सुरुचिपूर्ण नहीं समझा जाने लगा और उसका नाम अनेकों ने घासलेटी (नकली) साहित्य नाम रख दिया। कुछ भी हो, चाहे नाटक, चाहे कहानी, चाहे उपन्यास और चाहे कवित्व हो, सब में उग्र ने कला के मन्दिर में अपनी नवीन मौलिकता लेकर प्रवेश किया। इनकी भाषा मंजी हुई, परिमार्जित, कटी छटी, संक्षिप्त, संकेत-मूलक, उर्दूपन अधिक लिये, चुभती हुई, कटाक्ष और व्यंग्य पूर्ण होती है।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ये हिन्दी के प्रसिद्ध आचार्य थे। ये काशी विश्वविद्यालय में प्रोफेसर और नागरी प्रचारिणी सभा के संस्थापकों में से थे।

हिन्दी के पुराने ग्रन्थों की खोज करना, मिलने पर उनका सम्पादन करना आदि कार्य में आपका सर्वदा विशेष हाथ रहा। इन की प्राचीन साहित्य के विषय में गहरी छान बीन थी। आपने हिन्दी भाषा विषयक और उसके साहित्य के इतिहास के विषय में गहरा अध्ययन किया था। उसी के परिश्रम-स्वरूप आपने बड़ा महत्व-पूर्ण, हिन्दी के साहित्य का विस्तृत और अत्यन्त प्रामाणिक इतिहास लिखा, जो अब कई यूनिवर्सिटियों के पाठ्य ग्रन्थों में नियत है। आपने अधिकतर, इतिहास विषयक, भाषा विषयक या अन्य ऐसे ही अन्वेषणात्मक विषयों पर लिखा है। आप हिन्दी के प्रमुख आचार्यों में आज वे समय में माने जाते थे। आपकी भाषा सरल शान्त गम्भीर भाव और विचार पूर्ण और किसी भी उच्चतम साहित्यिक आचार्य के योग्य थी। आपकी शैली ऐसी थी कि पढ़ते हुए ऐसा अनुभव होता है कि जैसे कोई ऊँचे ऊँचे विचार कर रहा हो ऐसी स्वाभाविक गति है उसकी!

आपके हाल के कुछ वर्ष हुए निधन से हिन्दी की अपार क्षति हुई, फिर भी जो अमूल्य निधि आप हिन्दी को दे गये हैं, वह विश्व के साहित्यों में उसका मान बढ़ाने के लिए पर्याप्त है।

आचार्य श्यामसुन्दर दास ये भी शुक्ल जी के साथी, विश्वविद्यालय के प्रोफेसर और नागरी प्रचारिणी सभा के संस्थापकों में से हैं। प्राचीन भाषा और उस के साहित्य के विषय में आपकी भी गहरी विस्तृत छान-बीन (रिसर्च) है। आपने हिन्दी भाषा और उसके साहित्य के इतिहास के विषय में बहुत बड़ा ग्रन्थ लिखा है-जो हिन्दी की विशेष निधि हैं। आपने भाषा विज्ञान का भी ग्रन्थ लिखा। इसके अतिरिक्त साहित्य की समालोचना के विषय में भी आपने सर्व प्रथम साहित्यालोचन जैसा उत्तम ग्रन्थ लिखा। आप उत्कृष्ट कोटि के आचार्य हैं। आप की भाषा गंभीर, स्पष्ट, सामर्थ्यवती, व्यञ्जना पूर्ण और गम्भीर विषय के उपयुक्त है। आपकी आलोचनाएं, विषय की व्याख्या और निरूपण गहरे विचार तर्क और भाव लिये होते हैं। आपका वर्णन और विवेचन का ढंग आदर्श है। आपने निबन्ध-लेखन में भी भारी सफलता पाई थी। आदि से अन्त तक आप एक गंभीर और अत्युच्च श्रेणी आचार्य या स्कॉलर हैं। हिंदी

का सौभाग्य था कि उसको आप जैसे धुरंधर सेवक मिले। हिन्दी इनसे गर्वान्वित है।

डा० धीरेन्द्र वर्मा ये इलाहबाद यूनिवर्सिटी मे हैं। इन्होंने भाषा उसके साहित्य और भाषा विज्ञान के विषय में बड़े खोज पूर्ण ग्रन्थ लिखे हैं। भारतीय प्राचीन सभ्यता संस्कृति के इतिहास के विषय में भी इनकी गंभीर रिसर्च है। आपने प्राचीन भारत की सभ्यता और संस्कृति नाम का ग्रन्थ इस विषय में लिखा है।

इनके अतिरिक्त हिन्दी गद्य को अन्य असंख्य मार्मिक, शक्तिशाली लेखक मिले जो अथक अनवरत परिश्रम करके हिन्दी के साहित्य में वृद्धि करते रहे। अब हिन्दी गद्य सर्वथा सम्पूर्ण और विकसित होकर राष्ट्र भाषा के पद पर आसीन है, यह सब इन्हीं भक्त सेवकों की भक्ति का फल है।

प्रश्न आधुनिक काल के पद्य-साहित्य पर एक विशद नोट लिखो, जिसमें उसकी विशेष प्रवृत्तियों का पता लगे।

उत्तर पूर्व-परम्परा से प्राप्त ब्रज-भाषा काव्य भारतेन्दु के काव्य काल तक चलता है। उसके विषय, उस समय भी वे ही शृंगार, धर्म, नीति, प्रकृति-वर्णन, नखशिख वर्णन आदि रीति कालीन ही रहे। कृष्ण लीला के भी गीत गाये जाते थे। उनसे कुछ पूर्व राजा लक्ष्मण सिंह ने ब्रज भाषा में कालिदास के कई ग्रन्थांशों का पद्यबद्ध अनुवाद किया। उनसे भी पहिले सरदार सेवक आदि हाल के ही कवि हुए थे। किन्तु वे लोग प्राचीन परिपाटी का ही निर्वाह कर रहे थे। नवीनता या आधुनिकता उनमें नहीं थी। राजा लक्ष्मण सिंह ने तो भला अनुवाद ही किये थे, उनमें तो नवीनता का प्रश्न ही नहीं। ब्रज भाषा में नवीनता का अवतार भारतेन्दु से ही होता है। भारतेन्दु अपने समय के साहित्य की केन्द्रीय आत्मा थे, उनकी छाप और प्रभाव साहित्य के प्रत्येक क्षेत्र में पडे। ब्रज भाषा काव्य पर भी पडे। भारतेन्दु प्राचीनता के विरोधी नहीं थे, प्रत्युत उन्हे उसमें पर्याप्त अभिमान था, पर वे उसे नवीन समय और परिस्थिति के अनुरूप नवीन रूप में ही देखना चाहते थे। यही प्रेम उनका ब्रज भाषा के प्रति भी था और उसमें प्रचलित काव्य पद्धति के प्रति भी था। उन्होंने उसको निबाहा

भी। वे खड़ी बोली के उन्नयन में प्रयत्न कर रहे थे और उसमें कविता करने की प्रेरणा भी देते थे, पर व्रज भाषा से भी उन्हें प्रेम था। उसको भी वे प्रोत्साहन देते थे। उन्होंने जितने भी संस्कृत के अनुवाद किये, उनकी गद्य का अनुवाद खड़ी बोली के गद्य में, और पद्य का व्रज-भाषा पद्य में ही किया है। खड़ी बोली उस समय इतनी समर्थ भी नहीं थी कि उसमें कालिदास जैसे कवि के पद्यों का अनुवाद हो सके, दूसरे, अभी यह सन्देहास्पद विषय था कि खड़ी बोली पद्य में भी उचित कविता की जा सकती है। उधर व्रज भाषा सदियों तक काव्य भाषा रहने के कारण अत्यन्त परिमार्जित होकर समर्थ हो चुकी थी। अतः उसे कवि नहीं छोड़ सकते थे। व्रज भाषा में व्याकरण या शब्द निर्माण के नियम भी उतने कठिन नहीं हैं, कवि को बहुत स्वतंत्रता रहती है। अतएव खड़ी बोली का गद्य चल पड़ने पर भी व्रज भाषा में पद्य रचना बन्द नहीं हुई। हां इतनी बात अवश्य हुई कि अब उसमें प्राचीन शृंगार, भक्ति नख शिख आदि संकुचित विषयों पर कविता न होकर समय और परिस्थिति के अनुसार विभिन्न सामयिक विषयों पर थी। राष्ट्रीय आन्दोलन और राष्ट्रीय विचारों के उत्थान के साथ साथ साहित्य के क्षेत्र में भी उत्थान होता है और व्रज भाषा में देश विदेश, स्वदेशी विदेशी की ध्वनि सुनाई देने लगती है। राष्ट्रीय आन्दोलन केवल राजनैतिक उद्देश्य को ही लेकर नहीं चला था, यद्यपि प्रधानता निर्विवाद रूप से उसी की थी। विशेषतया उस आन्दोलन की बागडोर गांधी जी के हाथ में आती है तब से तो वह सर्वतोमुखी होकर देश के समस्त क्षेत्रों को व्याप्त कर लेता है। अछूत, स्त्रियां, पीड़ित किसान, मजदूर, विधवा, नशाविरोध, गाय, चर्खा, करघा आदि उसके अनेक रूप होते हैं। जीवन का क्या धार्मिक, क्या सामाजिक और क्या राजनैतिक कोई भी क्षेत्र नहीं मिलता, जिस पर इस राष्ट्रीय नव-चेतना का प्रभाव न पड़ा हो। स्वतंत्रता का वास्तविक अधिकारी बनने के लिये जिन जिन निर्बलताओं को दूर करने की आवश्यकता है, उन सभी के निवारण करने के लिए यह आन्दोलन चला, जो इतना सर्व व्यापी था कि भारतीय जीवन का कोई वर्ग ऐसा नहीं था, जो इससे प्रभावित नहीं हुआ। स्कूल मास्टरों से लेकर किसान-

मजदूर, वकील बैरिस्टर और राजाओ जमीदारों तक ने इस आन्दोलन में भाग लिया। साहित्यिक भी भला कैसे बच सकता था ? उसने सबसे आगे होकर स्वदेश और स्वराष्ट्र के गान गाये। कहना नहीं होगा, इस विषय गत नवीनता के कारण भी सर्व प्रथम भारतेन्दु ही हुए थे। अपनी बंग-यात्रा से वापिस आने पर, सर्व प्रथम इन्होंने ही इस प्रकार का 'भारत दुर्दशा' नामक राष्ट्रीय विचारों का काव्य लिखा, जिसमें स्पष्ट रूपेण कांग्रेसी विचार धारा है। भारतेन्दु केवल भावुक कवि ही नहीं थे, वे ऊंचे और निःस्वार्थ सुधारक भी थे। अतः विधवाओं की समस्या से लेकर अछूतों तक की उन्हे चिन्ता थी। इन सभी विषयो पर इन्होंने कवितायें भी लिखी हैं। सदियों से सोई हुई, अपने को भूली हुई, भ्रम में पड़ी हुई भारतीय आत्मा को चैतन्य करने का समय था, सो, उन सभी विषयों की अवतारणा उस समय की हिन्दी गद्य-धारा मे हुई, जिनके लिए स्टेज पर से व्याख्यान हुआ करते थे। भारतेन्दु के प्रभाव में अनेक ऐसे कवि हुए, जिन्होंने इस समय उत्कृष्ट कोटि की राष्ट्रीय कवितायें कीं। खड़ी बोली, क्योंकि उस समय कविता के लिए अपर्याप्त समझी जाती थी, इसलिए ब्रजभाषा मे ही मुख्य काव्य धारा चलती रही बहुत दिनो तक। ब्रजभाषा पद्य में, इस समय इन सभी विषयो पर कवितायें हुई। इनके साथ ही शृंगार या प्रेम का वर्णन भी हुआ, नायिका और उसके नख सिख का भी वर्णन हुआ। किंतु वह वर्णन प्रचलित परिपाटी मे उपमाओं और रूपकों से लाद कर नही हुआ, बल्कि कुछ आधुनिकता के रूप मे हुआ। अलंकारों की सहायता ली गई है, पर सहायता ही ली गई है, वे प्रधान नहीं रहे थे। प्रधानता इस समय काव्य के विषय पक्ष की होने लगी थी, जिसके लिए कवि विशेष प्रयत्नशील होता था। विषय भी अब स्थूल दैनिक जीवन के थे। अत. कोरे अलंकारों से काम नहीं चल सकता था। फलतः, स्वभावतः कविता में से बाह्य कला कम होती गई और वह सादगी-पसन्द होती गई। स्वाभाविक अलंकारो का त्याग नहीं किया गया। सारांश में, काव्य इस समय कल्पना लोक की ही न कह कर, दुनियां की, दैनिक जीवन की कहने लगता है। अब उसे आत्मा परमात्मा

में रुचि तो रहती है, कृष्ण में भी उसे उतना ही अनुराग रहता है, पर अब साधारण मनुष्य भी उसके लिए महत्व-पूर्ण हो गया है। वह बड़े बड़े राजा नवाबों की प्रशंसा नहीं करना चाहता है, वह अब दीन दुखी पीड़ितों की ओर ही अधिक झुकने लगता है। अभिप्राय यह है कि आधुनिक काल में यथार्थ वर्णन या वास्तविकता का वर्णन होने लगता है। अंग्रेज़ों के आगमन द्वारा जीवन में व्यावहारिकता या व्यापारिकता की वृद्धि होने से जैसे खड़ी बोली गद्य का विकास हुआ था, उसी प्रकार पद्य साहित्य भी इसी व्यावहारिक प्रवृत्ति के कारण वास्तविकता का सूत्र पाता है। कवि स्वप्न लोक या मधुर कल्पना-लोक से नीचे उतर कर, पहिली बार दुनिया के दुःख कष्टों का वस्तु-स्थिति का चित्र उतारने लगता है। इस काल से पहिले के साहित्यों में मनुष्य को ज्ञान के द्वारा, ईश्वर प्रेम द्वारा, भक्ति के द्वारा और अन्त को रीति-काल में उत्कट शृंगार या विषय वासना के वर्णन से अपनी विपत्ति को, दुःख को, भुला देने की प्रेरणा कवि देता रहा था। पर आधुनिक काल में, साहित्य समाज को उसका रोग दिखाना चाहता है, उसके कुत्सित रूप का वर्णन करता है, उसकी वास्तविक हीन दशा का चित्र खींचता है और उसे उठकर सोचने को प्रेरणा देता है। समस्त आधुनिक काल में यही भावना काम कर रही है, चाहे वह पद्य का साहित्य है और चाहे गद्य का। राष्ट्रीय आन्दोलन के साथ ही हिन्दी साहित्य की भी आत्मा पूर्ण सहयोग देकर चली है और सार्वजनिक चैतन्य उत्पन्न करने में पीछे नहीं रही है।

भारतेन्दु काल सर्जन काल है, विकास काल नहीं। इस काल के काव्य में निर्माण ही अधिक होता है, उसके परिमार्जन या विकास की दशा नहीं आती। अतएव ब्रजभाषा में भी नव नव विषयों की अवतारणा होती है, प्रचुर परिमाण में कविताएं होती हैं। काव्य-पद्धति में कोई विशेषता नहीं आती, काव्य कला का, अलंकार आदि का उचित उपयोग होता है और भी अन्य काव्यगत नियमों का यथावत् पालन ही किया जाता है, उनका तिरस्कार नहीं किया गया, जैसा कि उसके बाद के काल में खड़ी बोली के पद्य में हुआ। ब्रजभाषा काव्य ने अपनी प्राचीन परिपाटी का त्याग नहीं किया। हां छन्दों में नवीनता आने लगी थी। नये नये छन्द प्रयुक्त होते थे। उर्दू के ढंग पर,

मात्रिक छन्दों के अनेक नवीन रूपों का भी चलन हुआ। हिन्दी में गजलें भी लिखी गईं। प्रकृति वर्णन भी हुआ। पर प्रकृति को इस समय के ब्रज भाषा के कवियों ने भी उसके उद्दीपन विभाव के रूप में, केवल जड रूप में ही देखा, उसको सजीव नही देखा, जैसा कि बाद में प्रसाद, पन्त, निराला आदि ने। उन्होंने तो उसी प्राचीन लगे बंधे रूप मे, उसके स्थूल रूपों का सुन्दर और भव्य चित्र उतारा है। पर उसको स्वतन्त्र शक्तिमान कर उसकी अनुभूति का अनुभव नही किया, जैसा कि बाद में प्रचलित प्रकृतिवाद मे हुआ। उन लोगो ने प्रकृति को रसो की सहायिका उद्दीपन रूप में ही देखा, स्वतंत्र रूप में नहीं।

मुख्य मुख्य विशेषतायें ब्रजभाषा काव्य की आधुनिक काल मे ये ही हैं। इनमें से अनेक विशेषतायें उसी रूप मे खड़ी बोली काव्य में भी रही, पर खड़ी बोली की काव्य धारा आगे विविध विकासों में बह कर सर्वथा नवीन रूप धारण कर लेती है, और ब्रजभाषा में लिखना उत्तर काल में प्राय: बन्द हो जाता है। वैसे, ब्रजभाषा मे लिखने वाले लोग आज भी हैं और वे लिखते भी हैं, पर ब्रजभाषा का युग वस्तुत: रीतिकाल में ही समाप्त हो जाता है। उसके पश्चात् तो उसमें जो कुछ साहित्य बनता है, वह विशेषतया इसलिए बनता है कि खड़ी बोली उस समय पद्य काव्य के उपयुक्त नहीं होती और वह बनता भी तभी तक है, जब तक कि खड़ी बोली उसका स्थान लेने के योग्य नहीं हो जाती। फिर बन्द हो जाता है।

पर साहित्य मे स्थान न रहने पर भी ब्रजभाषा का महत्व कम नही हो जाता। यह तो उतार चढ़ाव भाषाओं की स्वाभाविक गति है। ब्रजभाषा मे इतना सुन्दर, इतना अमूल्य और इतने परिमाण मे साहित्य भण्डार है कि उसका अध्ययन ऐसे ही किया जाता रहेगा, जैसे अब किया जाता है। वह भारत की प्रमुख साहित्यिक भाषा रह चुकी है, जिसका काल लगभग सात आठ सौ साल रहा और जिसके क्षेत्र का भी विस्तार बहुत दूर तक रहा। इसलिए भारतीय भाषाओं में ब्रजभाषा भी अपना महत्व पूर्ण और अमर स्थान रखती है। जब तक भारत में कृष्ण का नाम रहेगा, तब तक ब्रजभाषा भी बनी ही रहेगी।

प्रश्न भारतेन्दु जी के व्रजभाषा काव्य का परिचय दो। उसकी विशेषतायें बताते हुए, उस पर आलोचनात्मक विचार प्रकट करो।

उत्तर भारतेन्दु हृदय के बहुत भावुक थे और फिर सौभाग्य से ऐश्वर्यशाली घर में जन्म लिया था। इससे वह भावुकता ऐयारी तक पहुँच गई थी। शिक्षा अच्छी प्राप्त की थी। फलतः वह भावुकता साहित्यिक क्षेत्र में भी कविता रूप में फूट निकली। वे व्रजभाषा में मधुर मधुर विषयों पर प्रचलित परिपाटी में कवितायें करने लगे। ऐसे भावुक और कवि लोगों से संग भी होने लगा, जमाव होने लगा। पर यह अभी शौक ही शौक था। इसके पीछे कोई प्रबल भावना नहीं थी, इस साहित्य का उद्देश्य केवल आत्मतुष्टि या आत्माभिव्यंजन ही था। उनके जीवन की काया पलट तो उस समय होती है, जब वे पूरी यात्रा में बंगाल जाते हैं। बंगाल में अंग्रेज़ सर्व-प्रथम आये थे और वहीं अत्याचार भी ईस्ट इण्डिया कम्पनी के जमाने में अधिक हुए थे। परिणाम-स्वरूप राष्ट्रीय चेतना भी सर्व प्रथम वहीं प्रबल हुई थी। स्वदेशाभिमान में बंगाली उबल रहे थे। बंगला भाषा पूर्ण विकसित हो, स्वदेशी गानों से गूंज रही थी। भारतेन्दु के भी लगन लग गई। वहां से वापिस आने पर ही इनका वास्तविक सार्वजनिक जीवन प्रारम्भ होता है। ये जातीय उत्थान के लिए अभिमुख प्रयत्न करते हैं, शिक्षा संस्थाये स्थापित करते हैं, विधवा सहायक सभाये चालू करते हैं, अखबार निकालते हैं और साहित्य-निर्माण द्वारा भी उसी सुधार और स्वराष्ट्र की भावनाओं को अभिव्यक्त करते हैं।

"अंग्रेज़ राज सुख साज सजे सब भारी।
पै धन विदेस चलि जात यहै अति ख्वारी ॥"

इसी प्रकार कि राष्ट्रीय काव्य इन्होंने तीन और लिखे, जो व्रजभाषा में हैं भारत दुर्दशा, अंधेर नगरी और नील देवी। भारत दुर्दशा में आपने भारत के अपार कष्टों का वर्णन किया है और भारत के भाग्य पर रुदन किया है।

"हाय ! वहै भारत भुव भारी। सब ही विधि सो भई दुखारी ॥'
'हाय ! पंचनद। हाय ! पानीपत, अजहूँ रहे तुम धरनी विराजत। आदि।

नीलदेवी में एक जगह आप कहते हैं—कहाँ करुनानिधि ! केसव ! सोए ?

जागत नाहिं अनेक जतन करि भारतवासी रोये ।

इसी प्रकार ब्रजभाषा पद्यों मे, इन्होंने राष्ट्रीय आन्दोलन से सम्बद्ध, स्वदेश, स्वभाषा, स्वजाति, स्वराष्ट्र स्वधर्म और स्वसंस्कृति, अछूत, स्त्री, गरीब, पीडित, आदि पर लिखा है। अंग्रेजों की, अंग्रेजों के राज्य की निन्दा करके स्वदेश भावो को जगाया है। इनके अतिरिक्त इन्होंने संस्कृत और बंगला के कई नाटकों का भी अनुवाद किया है, जिनका गद्य भाग तो खड़ी बोली में अनूदित है और पद्य भाग ब्रजभाषा में। इसके अतिरिक्त इन्होंने फुटकल और इति-वृत्तात्मक ऐतिहासिक कथाओं के भी पद्य लिखे हैं।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र उत्कृष्ट और प्रतिभा-सम्पन्न कवि थे। इन्होंने अधिक कविता ब्रजभाषा में की। पुरानी परिपाटी का परित्याग नहीं किया, पर उसमें सुधार करके, उसे नवीन त्रिविध काव्य-विषयों के उपयुक्त बनाया। उसके कला पक्ष को वहीं तक ग्रहण किया, जहां तक उनके अपने विषय-वर्णन मे सहायता रहती थी। व्यर्थ के कला प्रदर्शन में वे नहीं पडे। उन्होंने प्रचलित काव्य पद्धति का विषय विस्तार किया और उसमें असंख्य विषय लिखे। शृंगार भी लिखा, नायिकायें और उनके नख-शिख भी लिखे, कृष्ण और राधा के भी गीत गाये, पर उन सब का आधुनि-कीकरण करके। इन्होने प्राचीन वस्तुओं के प्रति विरोध नहीं प्रकट किया, बल्कि उनको आदर दिया और उनका ग्रहण करके उनको आधुनिक रूप दिया। इनके आगे के काल मे नवीनता का प्रेम और प्राचीनता का विरोध या तिरस्कार बहुत उत्कट रूप में होता है, पर वह खडी बोली में होता है। ब्रजभाषा काव्य में प्राचीनता के प्रति आदर बना रहता है, पर उसमें आधु-निकता का सम्मिश्रण हो जाता है। भारतेन्दु एक प्रबल सुधारक और नेता थे। वही प्रवृत्ति उनकी साहित्यिक रचनाओं में भी मिलती है। उन्होंने पुरानी काव्य पद्धतिको सुधारा, आधुनिकता के उपयुक्त बनाया और उसमें विविध विषयों के साथ ही उन्होंने अनेक नवीन छन्दों का भी चलन किया। उर्दू की गजलों लावनी के वजन में भी कविता लिखी। मात्रिक छन्दों के अनेक नवीन रूप भी चालू किये। राग रागनियों में भी पद बांध कर

लिखे। भाव यह है कि उन्होंने ब्रजभाषा साहित्य का बहुमुख विकास किया। कविता को उन्होंने केवल सौन्दर्य-वर्णन का ही साधन नहीं बनाया प्रत्युत उसमें भारत के वास्तविक जीवन का वर्णन किया। प्राकृतिक दृश्यों को चीता। पर प्रकृति वर्णन में भारतेन्दु भी प्राचीन कवियो से ऊपर नहीं उठ सके, प्रकृति का वे भी जड़ रूप ही देख सके। उसके स्थूल सौन्दर्य में ही वे डूब कर आनन्द ले सके, उसके आत्मिक रूप का दर्शन नहीं कर सके। अतएव वे भी उसका रस के सहायक उद्दीपन रूप में ही वर्णन कर पाए, उसके साथ स्वतन्त्र रागात्मक सम्बन्ध बना कर स्वतन्त्र रूप में नहीं। यह भाव भारतेन्दु काल के प्रायः सभी कवियों में पाया जाता है। प्रकृति का एक स्वतंत्र शक्ति के रूप में वर्णन तो खड़ी बोली में अंग्रेजी साहित्य के अनुसरण पर प्रारम्भ होता है। भारतेन्दु काल की यह विशेषता नहीं है।

हिन्दी के लिए भारतेन्दु साहित्य का ही केवल महत्व नहीं है। भारतेन्दु जी ने अपना समस्त जीवन ही हिन्दी के अर्पण कर दिया था। इन्होंने बनारस नामक दैनिक पत्र चलाया, कवि वचन सुधा, बाल बोधिनी, हरिश्चन्द्र मैगजीन आदि पत्र पत्रिकाएं चलाईं। हिन्दी को सस्थाएं, समाज, कविगोष्ठियां स्थापित की। आर्थिक सकट मे होते हुए भी ये सर्वदा निर्धन साहित्यिकों या विद्यार्थियो को पर्याप्त सहायता करते रहते थे। साहित्यिकों को प्रबल प्रेरणा देकर साहित्य रचना करवाते थे, पुरस्कार भी देते थे। इनकी मण्डली बन गई थी, जिस में कवि, उपन्यास लेखक, सम्पादक, आदि सभी लोग थे। ये एक ऐसी प्रबल संचालक शक्ति थे कि अपने समय की साहित्यिक गति विधि के मूलाधार थे। इनकी मण्डली के प्राय: सभी सदस्यों पर इनका कुछ न कुछ प्रभाव पड़ा था। अतएव इनके आदर्श पर ही अन्य लोग भी ब्रजभाषा में कवितायें करते थे, और इनके जैसे विषय ही वर्ण्य रखते थे। भारतेन्दु अपने युग के नेता थे और सर्वमान्य नेता थे। ब्रजभाषा का उनके समय तक चलन रहा, उनके बाद में वह प्रायः बन्द सा हो जाता है। खड़ी बोली में पद्य रचना उस समय प्रारम्भ हो जाती है और लोग विचार करने लगते हैं कि अंग्रेजी के ढंग पर उनकी भी गद्य और पद्य की एक ही भाषा हो। भारतेन्दु स्वयं इसी विचार में थे, पर खड़ी बोली की

इतनी परिमार्जित अवस्था बाद के काल में ही आती है, भारतेन्दु काल में तो काव्य मे प्रधानता ब्रज की ही रहती है। अधिकतर काव्य उसी में लिखे जाते हैं, हां खड़ी बोली मे पद्य रचना प्रारम्भ हो जाती है। पर उसकी सामर्थ्य में सन्देह बना रहता है इनके काल मे।

भारतेन्दु ने एक ही रस में नहीं लिखा। इन्होंने शृंगार, वीर, हास्य और करुण सभी समान सफलतापूर्वक लिखे है।

प्रश्न भारतेन्दु के समय में या उनके बाद के अन्य ब्रजभाषा के कवियों का संक्षेप में यथा संभव सोदाहरण परिचय दो।

उत्तर भारतेन्दु काल के और उनके बाद के कवियों का संक्षेप में परिचय नीचे दिया है।

पं० प्रताप नारायण मिश्र—ये भारतेन्दु के परम भक्त मित्र थे। उनके प्रभाव में इन्होंने भी ब्रजभाषा में सुन्दर कवितायें की हैं। कविताओं के विषय भारत दुर्दशा या अन्य ऐसे ही राष्ट्रीय विचारों के साथ बुढ़ापा गोरक्षा आदि भी रखे हैं। गोरक्षा, बुढ़ापा, हिन्दु, हिन्दी, हिन्दुस्तान, हरगंगा, तृप्यन्ताम् आदि इनकी ऐसी ही स्वतन्त्र कविताएं हैं। इन्होंने हास्य रस भी सुन्दर सभ्यजनोचित लिखा है। ये अच्छे पढ़े लिखे संस्कृत के पण्डित थे।

प्रेमघन इनका पूरा नाम पं० बदरीनारायण चौधरी प्रेमघन था। ये भी स्वदेश और स्वराष्ट्र की भावना रखते थे, पर वह इतनी उग्र नहीं थी। ये विशेष विशेष महत्व पूर्ण अवसरों पर, स्वतंत्र वर्णनात्मक स्तुतिपरक कविताएं लिखते थे। इन्होंने दादा भाई नैरोजी के असेम्बली के मेम्बर होने पर, विक्टोरिया की हीरक-जुबिली पर सुन्दर कविताएं लिखी हैं। इन्होंने भारत सौभाग्य नामक नाटक भी लिखा था, जिसका कविता-भाग बहुत सरस माना जाता है। उदाहरण:

भयो भूमि भारत में महाभयंकर भारत।
भए वीरवर सकल सुभट एक ही संग गारत ॥आदि॥

ठाकुर जग मोहन सिंह—ये भी भारतेन्दु जी के सहयोगी थे और

ब्रजभाषा में लिखते थे। इनका प्रकृति वर्णन संस्कृत के ढंग का सजीव और अत्यन्त उत्कृष्ट माना जाता है।

अम्बिका दत्त व्यास--इनका वर्णन गद्य भाग में हो चुका है। इन्होंने ब्रजभाषा पद्य लिखे हैं।

पं० श्रीधर पाठक इन्होंने ब्रजभाषा में प्रकृति वर्णन बहुत सुन्दर और रसमय किया है। इन्होंने हिमालय वर्णन, कश्मीर वर्णन और धन विनय नामक प्रकृति काव्य लिखे हैं, जिन में प्रकृति की सजीव मूर्ति, आत्मा का वर्णन किया है। भारतोत्थान और भारत प्रशंसा नामक काव्य इनके देश-भक्ति के काव्य हैं। एक नमूना:

अनगिन पर्वत खण्ड चहुं दिसि देत दिखाई।

सिर परसत आकास चरन पाताल छुआई ॥(हिमालय वर्णन)

सत्यनारायण कविरत्न--ये ब्रजभाषा के प्रसिद्ध कवि थे। कृष्ण भक्त थे। इन्होंने उत्तर राम चरित और मालतिमाधव का ब्रजभाषा में अनुवाद किया था। उदाहरण--

सब ओर जितै तित देखत हैं। इग मोहनी मूरति भाइ रही।

चहुं बाहिर औ उर अन्तर में बहुरूप अनूप दिखाई रही। आदि॥

वियोगी हरि आप अभी वर्तमान हैं, पर आपने कविता करनी छोड़ दी है। इन्होंने ब्रजभाषा में वीर सतसई नामक सात सौ दोहों का संग्रह प्रकाशित किया था। इस पर इन्हें १२००) का मंगला प्रसाद पारितोषिक मिला था। ये भक्त भी हैं और भक्ति और प्रेम पर सुन्दर लिखा है। ये राष्ट्रीय विचारों के सुधारक व्यक्ति हैं। कांग्रेस से विशेष सहयोग रहा है। गांधी जी के प्रभाव में हरिजनोद्धार से प्रेम करते हैं। ये कुशल सम्पादक भी हैं। उदाहरण'

निज प्रिय लाल कटाय जो प्रभु सिसुलियो बचाय।

क्यों न होय मेवाड़ में पूजित पन्ना धाय।

राय देवी प्रसाद पूर्ण ये एक सरकारी अफसर थे। कायस्थ थे। प्राचीन परिपाटी में शृंगार, भक्ति, ऋतु वर्णन आदि के साथ इन्होंने देश-भक्ति की फुटकल कविताएं भी सुन्दर की हैं। हास्य और विनोद पूर्ण भी

लिखा है। एक कविता में नेता की रेल के इंजन से समता की है
डिब्बों की जनता से। आप कहते हैं डिब्बों की तरह जनता चढ़ाई में
(आपत्ति मे) नेता को (डिब्बो की तरह) पीछे को घसीटती है
उतराई पर आगे को धकेलती है। उदाहरण:

परसि सलिल तेरो सीतल है पौन जौन ॥
ताके मन्द झोकन जगैयो प्रानप्यारी को ॥ आदि।

रामचन्द्र शुक्ल- ये हिंदी के प्रसिद्ध आचार्य थे, जो हिदी के
निर्माताओ में माने जाते है। इन्होने बुद्ध-चरित्र नामक व्रज भाष
लिखा है। इन्होंने इसमें करुणा का सुन्दर चित्र खींचा है। इनका
इस काव्य से ऐडविन का लाइट ऑफ एशिया था। इनका प्रकृति
बहुत सुन्दर माना जाता है। उदाहरण:

देखि परै सांवरे सलोने कहुँ गोरे मुख।
भृकुटी विशाल बक बरुनी बिछी है स्याम ॥ आ

जगन्नाथ दास रत्नाकर ये भारतेन्दु काल के थे और ब्रज
इतने भक्त थे कि सदैव उसी में कविता की। खड़ी बोली के आन्द
ये अप्रभावित रहे। इनके ग्रन्थ हरिश्चन्द्र, गङ्गा लहरी, गङ्गावतरण
उद्धव शतक हैं। इन्होने श्रृंगार वीर भयानक, भक्ति आदि अनेक
लिखा है और प्रकृति वर्णन भी सुन्दर किया है। उदाहरण:।

वीर अभिमन्यू की जदालप कृपान बक्र।
सक्र असनी लौं चक्रव्यूह मांहीं चमकी ॥

इन लोगो के अतिरिक्त गया प्रसाद शुक्ल सनेही, शङ्कर, दी
नारायण पाण्डेय के नाम आते हैं, जिन्हों ने खड़ी बोली और ब्र
दोनों मे कविता की है।

प्रश्न — खड़ी बोली के पद्य साहित्य पर एक ऐतिहासिक और वि
त्मक विवरण दो।

उत्तर वैसे, खींचातानी कर के तो हम खड़ी बोली के पद्य-सा
इतिहास को बहुत दूर तक खींच कर लेजा सकते हैं। कबीर; खुसरो क

-दास और कई एक अन्य अंतिम कृष्ण-भक्त कवियों ने भी कृष्ण भक्ति के कुछ पद खड़ी बोली मे, उर्दू वालों के प्रभाव में, बनाये हैं और सूफियों की तरह 'कृष्ण से इश्क' किया है। कई एक उर्दू के मुसलमान और हिन्दु भी शायर हुए, जिन्होंने हिन्दीनुमा उर्दू में कृष्ण भक्ति की गजलें आदि लिखीं। किन्तु खड़ी बोली में वास्तविक पद्य रचना तो तभी प्रारंभ होती है, जब इस भाषा को पड़ी हुई (दबी हुई, अप्रचलित) को खड़ी (प्रचलित) करने के प्रयत्न होते हैं। इसी आधार पर इसका नाम भी खड़ी बोली ही होता है। ये प्रयत्न आधुनिक काल मे ही होते हैं। भारतेन्दु काल तक खड़ी बोली का गद्य तो चालु हो गया था, पर पद्य रचना अभी ब्रजभाषा मे ही होती थी। भारतेन्दु के काल में उनके सहयोगी अधिकतर तो ब्रजभाषा में ही काव्य रचना करते थे पर कभी २ ख्याल लावनियों मे या गजलों और ऐसे ही अत्यन्त प्रचलित उर्दू छन्दों में खड़ी बोली का व्यवहार कर लेते थे। साथ ही अन्य नवीन विषयो पर भी जो कविता हुआ करती थी, उसमे भी कभी २ खड़ी बोली का व्यवहार हो जाता था। पर यह सब शौकिया होता था। काव्य के उपयुक्त अभी भी ब्रजभाषा को ही समझा जाता था। हां भारतेन्दु के अन्तिम काल में आकर खड़ी बोली के लिए आन्दोलन के चिन्ह स्पष्ट होने लगे थे, जो फिर उत्तरकाल में एक प्रबल आन्दोलन के रूप में परिणत हुए। किन्तु यह काल भारतेन्दु जी के बाद में उपस्थित होता है, उनके समय में नहीं। उनके समय में तो खड़ी बोली में पद्य रचना प्रारम्भ हो जाती है और उसमें विविध विषयों की भी अवतारणा होती है। पद्य रचना का प्रवाह तो खड़ी बोली में उनके बाद में ही आता है, जब वह अत्यन्त समर्थ होकर अनेक काव्य शैलियों का भी विकास करती हैं।

खड़ी बोली पद्य साहित्य बहुत विस्तृत है, परिमाण की दृष्टि से ही नहीं विषयों और शैलियों की दृष्टि से भी। खड़ी बोली पद्य-साहित्य मे दुनिया भर के विषय लिखे गये हैं। विश्व-प्रचलित मुख्य मुख्य सभी काव्य-शैलियों का आधार लेकर रचनाएं लिखी गई हैं। अनेक नवीन वादों का जन्म हुआ कवि के दृष्टि कोण बदले, साहित्य के विषयों के साथ उसकी प्रवृत्तिया भी बदली और साथ ही कवियों की स्थिति भी बदली। इन असंख्य परिवर्तनों

या विकासों को अपने वृहत् साहित्य-गर्भ में समाये खड़ी बोली इस समय राष्ट्र भाषा के पद पर आसीन है। अभी यह सब उन्नति या विकास इन थोड़े से पिछले ३०—४० सालों में ही हुई है। अतः समझा जा सकता है कितनी तेजी से खड़ी बोली साहित्य उन्नति के पथ पर बढ़ा है। उसका समग्र वर्णन एक ही सांस में नहीं हो सकता। उसकी गति विभिन्न दशाओं के आधार पर, उसे यदि कई समयों मे विभक्त कर लिया जाय, तभी उसकी धारा का समुचित और क्रमिक ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। इस लिए थोड़े में और स्पष्ट रूप में खड़ी बोली के पद्य साहित्य का ज्ञान प्राप्त करने के लिए उसे चार उत्थानों (या कालों) में बांट लिया जाता है।

प्रथम उत्थान, भारतेन्दु काल से प्रारम्भ होकर तब तक चलता है जबतक साहित्य क्षेत्र मे द्विवेदी जी का प्रभाव नहीं पड़ता। भारतेन्दु के पश्चात् कुछ दिन वे ही प्रवृत्तियां काव्य में चलती रहीं। यह प्रथम उत्थान का काल खड़ी बोली पद्य साहित्य का शैशव काल है। इस में खड़ी बोली में पद्य रचना प्रारम्भ हो जाती है और उस में अनेक विषयों पर फुटकल शौकिया कविताएं लिखी जाती हैं। पद्य में ब्रज भाषा की ही प्रधानता रहती है, इस काल में खड़ी बोली मे पद्य रचना दो तीन रूपोंमे प्रचलित होती है। कुछ तो उर्दू की गजलों आदि के ढंग के छन्दों में खड़ी बोली लिखी गई। भारतेन्दु ने स्वयं भी लिखीं, उन के मित्रों ने भी लिखी। कुछ कविताएं प्राचीन काव्य पद्धति के कवित्त, सवैया रोला आदि छन्दों में लिखी गईं। कुछ ख्याल और लावनियों के ढंग में भी खड़ी बोली की रचनाएं लिखी गईं। अपने समय में ख्याल और लावनीका भी बड़ा जोर रहा। भारतेन्दु जी ने भी ख्याल और लावनियां लिखीं और इन के मित्रों ने भी। इसी प्रकार के विविध रूपों में खड़ी बोली का छन्दों में प्रयोग होने लगा था। कविता के विषय भी अनेक हो गये थे। कोई भी विषय कविता के अनुपयुक्त नहीं समझा जाता था। सभी को पद्य मे स्थान मिलता था। भारतेन्दु के स्वर्गवास के पश्चात ही खड़ी बोली का एक विशेष आन्दोलन चल पड़ता है। इस आन्दोलन मे अयोध्या प्रसाद खत्री का नाम विशेष स्मरणीय रहेगा वे खड़ी बोली को ही हिन्दी समझते थे और ब्रज भाषा का विरोध करते थे। उसी उद्देश्य के लिए हिन्दी का झंडा

लेकर के विद्वानों की रायें लेते, सभा सोसाइटियों में प्रचार करते घूमते थे। भारतेन्दु के जीवन काल में खड़ी बोली को पद्य के उपयुक्त नहीं समझ कर ब्रज भाषा में ही पद्य रचना होती रही, किन्तु उन की मृत्यु के उपरान्त ही खड़ी बोली के आन्दोलन के समय पद्य में भी उसी का प्रयोग करने का प्रयत्न होता है। अंग्रेज़ी को देख कर अपनी भाषा को गद्य और पद्य में एक ही रखने की प्रवृत्ति जाग्रत होती है। एक सिद्धान्त निश्चित हो जाता है कि पद्य की और गद्य की भाषा एक ही होनी चाहिये। इसी के अनुसार फिर पद्य-रचना प्रारम्भ होती है। सर्व प्रथम श्रीधर पाठक का एकान्त वासी योगी निकला, इन्होंने इसे लावनी छन्दों में खड़ी बोली में लिखा। अत एव इन्हें ही खड़ी बोली का आदि कवि माना जाता है। इन के साथ ही उस क्षेत्र में हरिऔध, गुप्त जी आदि अनेक महा कवियों के नाम आते हैं, जिन्हों ने उस समय खड़ी बोली में पद्य रचना आरम्भ कर दी थी। किन्तु ये लोग विशेषतया द्विवेदी जी के प्रभाव काल में आते हैं। हां इन लोगोंने उस समय रचनाएं प्रारम्भ कर दी थीं। भारतेन्दु काल की ब्रज भाषा को प्रधानता देने की प्रवृत्ति उन के पश्चात् अधिक दिन नहीं चलती और बड़ी तीव्र गति से खड़ी बोली उसका स्थान ले लेती है। इस लिए भारतेन्दु काल को खड़ी बोली की पद्य रचना का केवल जन्म काल ही कह सकते हैं, जब उस में पद्य-निर्माण प्रारम्भ हो जाता है, पर ब्रज भाषा का आदर कम नहीं होता। नव नव विषयों को लेकर पद्य रचना अधिकतर उसी में होती है। भारतेन्दु जी के पश्चात् ही ब्रज भाषा का प्रधान अवलम्ब टूट जाता है और सामयिक परिस्थियों से विवश हो कर वह खड़ी बोली के लिए पद्य में भी स्थान छोड़ देती है।

शैली इस समय भी अधिकतर ऐतिहासिक या वर्णनात्मक ही रहती है। खड़ी बोली भी उस समय ऐसी नहीं थी कि उस में ऊँची भावात्मक कविता हो सके। अत फुटकल सामाजिक राजनैतिक विषयों का पद्य में वर्णन होता था। लावनी और ख्यालोंमें एक मात्राओंका ही वजन लिया जाता है अतः छन्द बन्धन अधिक कठिन नहीं होता। खड़ी बोली को उस में फिट बिठाना, इतना

मुश्किल नहीं था। दूसरे, इस शैलीमें भावों के व्यक्त करने की शैली भी सरल सीधी और वर्णन के विषय भी साधारण होते हैं। अतएव उन में खड़ी बोली के चलन मे कोई बाधा नहीं रही, पर काव्य के कठिन छन्द बन्धन में खड़ी बोली को उस समय अविकसित दशा में ढालना कठिन था, साधारण विषयों के वर्णन में भी कठिनाई लगती थी। अतएव भारतेन्दु काल में खड़ी बोली पद्य रचना के वर्ण्य विषय वर्णनात्मक ही रहे। भारतेन्दु के पश्चात् स्वदेशी और स्वदेश के आन्दोलन के साथ (स्व भाषा) खड़ी बोली का भी आन्दोलन चलता है, जो आशातीत सफलता प्राप्त करता है।

द्विवेदी जी के काल को खड़ी बोली पद्य रचना का द्वितीय उत्थान माना जा सकता है। इन दोनों ही कालों में समय का कोई विशेष अन्तर नहीं है। अन्तर केवल प्रवृत्तियो और विकास का है। भारतेन्दु काल की अनेक प्रवृत्तियो में से जो समय के अनुकूल थीं, उनका द्विवेदी काल मे पूर्ण विकास हुआ और जो समय के अनुकूल नहीं समझी गईं, उनका त्याग हुआ। ब्रज भाषा की ऐसी ही प्रवृत्ति थी, जो समय के प्रतिकूल होने से छूट गयी। काव्य में विविध सामयिक विषयों का समावेश करने की प्रवृत्ति का ग्रहण हुआ, और उसका खूब पोषण हुआ। इसी प्रकार अन्य प्रवृत्तियों का भी है। उन में से अनेक का द्विवेदी काल में पूर्ण विकास देखते हैं।

द्विवेदीजी संस्कृत के आचार्य थे और अपने समय के भी वास्तविक आचार्य थे। खड़ी बोली की इन्होंने जो सेवा की, उसके उपलक्ष्य में इन्हें भीष्म पितामह कहा जाता था। खड़ी बोली का कोई भी क्षेत्र ऐसा नही है जिसके सुधार की काट छांट की और व्यवस्था की ओर इनका ध्यान नहीं गया हो। इन्हों ने सरस्वती पत्रिका चला कर उसके द्वारा खड़ी बोली की विधान व्यवस्था का जो भीष्म प्रयास किया, उसकी छाप खड़ी बोली के इतिहास में अमर है। क्या गद्य और क्या पद्य सभी पर इनकी आचार्य लेखनी चलती थी, जिसकी शक्ति और तर्क शक्ति के आगे प्रतिद्वन्द्वी बगलें झांकता नजर आता था। प्रभाव स्वरूप अनेक अच्छे कवि इनकी बात आदर से सुन कर मानते थे। और इनका उद्देश्य खड़ी बोली में रचना-बाहुल्य होने के साथ

साथ उस में व्यवस्था करना भी था। यह व्यवस्था इन्होंने गद्य में भी की और पद्य में भी। अतएव भारतेन्दु के समान ये भी अपने समय के युग-पुरुष थे। हिंदी साहित्य मे, इन के काल में, खड़ी बोली को पद्य-रचना में भी प्रयोग करने के सिद्धान्त का निर्णय हो, उसमें प्रभूत परिमाण में रचनाएं होती हैं। काव्य, महा काव्य, फुटकल रचनाओ की बाढ़ आ जाती है। बड़ा छोटा सभी खड़ी बोली को अपनाते हैं। द्विवेदी जी, हरि औध, गुप्त जी, प्रसाद जैसे महा महिम लेखकों के पर्याप्त प्रमाण में खड़ी बोली में पद्य साहित्य के निकल जाने पर खड़ी बोली की सामर्थ्य के विषय में सन्देह नहीं रह गया। नवयुवक साहित्य-सेवी उन लोगों के आदर्श पर खड़ी बोली में ही काव्याभ्यास करने लगे थे। खड़ी बोली के अनेक पत्र निकलने लगे थे, उनमें खड़ी बोली की सुन्दर कविताएं रहती थीं। द्विवेजी को लेखनी की तीखी मन्दी आलोचना प्रत्यालोचना द्वारा पद्य रचना भी खड़ी बोली के साथ ही निखरती जा रही थी। खड़ी बोली के प्रारंभिक काल में हरि औध जी आदि ने खड़ी बोली पद्य में वर्णवृत्तो को अपनाया था। कारण, उस में गीत और प्रवाह अधिक होता है, वर्णन के लिये उपयुक्त रहते हैं। और भी कारण है, उनमें खड़ी बोली को संस्कृत व्याकरण के समास नियमों का आधार लेकर अधिक आसानी से बैठाया जा सकता है। बाद के कालों में ज्यों-ज्यों भाषा की सामर्थ्य और व्यंजना शक्ति अधिक बढ़ती गई, वर्णवृत्तों का भी या संस्कृत के प्रचलित छन्दों का भी चलन बंद होता गया। लम्बे लम्बे समास भी कम होते गये और पद्य भाषा अपने स्वाभाविक रूप में आती गई। छंदों का प्रयोग बढ़ने लगा। द्विवेदी काल में खड़ी बोली की काव्य-रचना अत्यंत परिमार्जित व्यवस्थित और परिपुष्ट हो जाती है। अतएव इस काल को खड़ी बोली या हिंदी का बाल्य काल या शैशव और यौवन के बीच का काल कह सकते है। इस द्वितीय उत्थान में हिंदी पद्य साहित्य में विविधता, रुचिरता, व्यवस्था, और संस्कृतता आती है, अनेक काव्य, महा काव्य लिखे जाते हैं, फुटकल रचनाओं का तो ठिकाना नहीं रहता। अनुवाद भी होते हैं, संस्कृत काव्यों के, और बंगला मराठी, अंग्रेज़ी आदि भाषाओं के काव्यों के भी। सारांश में

एक बार तो पद्य रचना या काव्य रचना की बाढ़ सी आ जाती है खड़ी बोली में, जब कि उसमें से विभिन्न शाखाएं फूटने लगती हैं। द्विवेदी काल की मुख्य प्रवृत्तियां यहीं समाप्त हो जाती हैं। अब आगे उसका (खड़ी काव्य रचना का) विकास काल आता है, जब वह पूर्ण परिपुष्ट हो विविध भाव-भङ्गियों और रूपों में विकसित होती है। द्विवेदी जी स्वयं प्राचीनता के परम भक्त थे, पर उसे ऐसा रूप देना चाहते थे, जो आधुनिक काल के अनुसार परिवर्तित हो, पर जिसका मूल आधार प्राचीन भारतीय ही हो। इस बात में वे भारतेन्दु जी के समान ही थे। वे नव विकास के भी विरोधी नहीं थे। पर उसे प्राचीनता से सर्वथा पृथक् या विरुद्ध नहीं चाहते थे। अतएव उनका काल तभी तक वस्तुतः रहता है जब तक हिन्दी काव्य पूर्ण परिपुष्ट हो विकसित नहीं होने लगता। उनका उद्देश्य भी हिन्दी साहित्य को समर्थ परिपुष्ट और व्यवस्थित करने का ही था, जो उनके प्रभाव काल में पूर्णतया सिद्ध हुआ। वैसे तो हिन्दी के सौभाग्य से वे बहुत दिनों जीवित रहे और अपने प्रयत्नो को फलता देखकर सन्तोष प्राप्त करते रहे, पर उनका कार्य-काल वस्तुतः तभी समाप्त हो जाता है, जब खड़ी बोली का रूप पूर्णतया स्थिर हो जाता है और उसका साहित्य या काव्य पुष्ट हो जाता है। उनके काल में भी काव्य शैलि अधिकतर वर्णनात्मक ही रही, विभिन्न ऐतिहासिक या धार्मिक पौराणिक कथानकों का खड़ी बोली पद्यों में वर्णन हुआ। प्रबन्ध काव्य या कथा काव्यों मे बीच २ में ऐसे स्थल भी अवश्य हैं जहां उत्तम भाव प्रधान कविता बनी है, पर स्वतन्त्र भाव तत्व को लेकर कविताएं नहीं हुई, जैसा कि बाद के काल में अंग्रेज़ी की लीरिक कविता के ढंग पर हुआ। द्विवेदी काल वस्तुतः हिन्दी काव्य में, व्यवस्था और परिपोषण का काल है, जिसमें प्राचीन रूढ़ियों को आधुनिक रूप देकर या व्यर्थताको छोड़कर उनको निभाने का प्रयत्न किया गया है। इस काल के अनन्तर ही नवीन काल या विकास काल प्रारम्भ होता है, जिसमें हिन्दी काव्य शैलियों के विकास के साथ २ विषयों में भी परिवर्तन होता है और समाज के और कवि के दृष्टिकोण से भी भारी अन्तर आता है। यह द्विवेदी काल का उत्तर काल या तृतीय उत्थान कहा जा सकता है।

इस तृतीय उत्थान को विकास काल कहा जाता है। इस काल में हिन्दी-काव्य में नवीन धाराओं का उदय होता है। इस समय देश में राजनीति में गांधी जी का प्रभाव बढ़ता है और साहित्य में रवीन्द्र का प्रभाव बढ़ता है। इन दोनों ही महापुरुषों का हिन्दी साहित्य में भी प्रभाव पड़ता है। हिन्दी साहित्य के कवि भी गांधी जी के साथ चर्चा, कर्घा, ग्राम, किसान, मज़दूर, पीड़ित, अछूत की ओर मुड़ते हैं। काव्य में इन्हीं विषयों पर सुन्दर कविताएं निकलती हैं। सौन्दर्य के क्षेत्र में रवीन्द्र का प्रभाव पड़ता है और उनके आधार पर रहस्य छायावाद आदि की शैलियों का विकास होता है। इस शाखा के प्रतिनिधिभूत हम प्रसाद निराला पन्त और महादेवी वर्मा आदि को ले सकते हैं। प्रसाद जी पर हिन्दी और संस्कृत के प्राचीन साहित्य का भी प्रभाव पड़ा था, रहस्य भावना की मात्रा उन्हे उन साहित्यों में भी मिली थी, पर अनेक अंशों मे उन्होंने रवीन्द्र के आधुनिक भाव प्रकाशन के प्रकारों को अपनाया था। प्रसाद जी ने अधिकतर परमात्मीय अनुभूति में रहस्यवाद ही लिखा। मानसिक प्रवृत्तियों का रूपकों के रूप मे वर्णन करने से उन्हें छायावादी भी कहा जाता है, पर थे वे वस्तुत: आध्यात्मिकता से अनुप्राणित रहस्यवादी ही। वस्तुतः छायावाद और रहस्यवाद में विशेष मौलिक अन्तर भी नहींहै, अतः इन दोनों ही शैलियों की सत्ता इन उपर्युक्त चारों कवियों मे न्यून अधिक रूप में मिल जाती है। इस विकास काल की विशेषता यह भी है कि नव विकास के साथ प्राचीन काव्य पद्धति के नियमों केप्रति अवहेलनाके भावभी जागृत होते हैं। अलंकारों के प्रयोग को अनावश्यक समझा जाताहै, बल्कि कवि के कवित्व की कमी माना जाता है। संस्कृत वृत्तों का आधार लेकर द्विवेदी काल में व्रज भाषा के अनुकरण पर तुकान्त कविता लिखने का जो चलन हुआ था उसका त्याग होता है। अतुकान्त पद्य लिखे जाते हैं। बल्कि बहुत सों ने तो छन्दों को भी बन्धन मानकर उनकी अवहेलना की। उचित पालन करना छोड़ दिया, प्रत्युत अंग्रेज़ी की ब्लैंकवर्स (Blankverse)के ढग पर गद्यगीत लिखने की भी शैली चली, प्राचीन विषयों का, प्राचीन उपमाओं और कवि समय सिद्ध प्रयोगों का त्याग हुआ। अन्य भाषाओं के साहित्य से नवीन शैलियों का ग्रहण होता है, वर्णन के प्रकारों

का ग्रहण होता है, भाव व्यंजना की विधि बदलती है और काव्य रचना के सिद्धान्त भी बदलते हैं। कवि का दृष्टिकोण भी बदलता है। अब उसे आत्मा या परमात्मा की अनुभूति में, या बड़े २ ऐतिहासिक व्यक्तियों के वर्णन में रुचि नहीं है। अब वह साधारण और प्राकृत पीड़ित जन के दर्शन की ओर ध्यान देता है। व्यक्ति का उसके लिए विशेष महत्व हो जाता है। व्यक्तिगत मन की भावनाओं का चित्रण उसके लिए अधिक सरस होता है। शृंगार का स्थान करुणा और भक्ति का स्थान मानव प्रेम ले लेता है। कवि एक ओर रवीन्द्र के अनुसरण में कल्पनालोक या छायालोक की भी सैर करता है और दूसरी ओर गांधी जी के प्रभाव में वस्तुवादी बनता है। राजनीति और समाज के इस उथल पुथल और संघर्ष के युग मे हिन्दी साहित्य भी विविध शैलियों में से और विचारधाराओं में से विकसित होता हुआ अपने इस समृद्ध रूप मे पहुंचता है। अभी यह विकास काल ही चल रहा है और अब तक इसमें रहस्यवाद, छायावाद, वस्तुवाद, हालावाद, वालावाद, प्रकृतिवाद, प्रगतिवाद आदि अनेक वाद चालू हो चुके है। इस विकास की प्रक्रिया मे आगे क्या परिवर्तन होगा, यह कहना तो कठिन है, पर विषय और दृष्टिकोण के लिहाज़ से, स्वतन्त्रता प्राप्ति के साथ, पुराना आधुनिक काल समाप्त हो जाता है और नवीन काल या स्वतन्त्रता-काल प्रारम्भ हो जाता है।

हिन्दी या खड़ी बोली पद्य साहित्य या काव्य साहित्य इस समय समुद्र बना हुआ है। जिसकी जलनिधि और रत्ननिधि का कोई पारावार नहीं है, जिसमे से अनेक सरणियां, सागर निकल रहे है और छोटे मोटे प्रवाहों का तो अन्त ही नहीं है। आगे भी प्रवाह किधर बहता है कौन कह सकता है?

प्रश्न संक्षेप में समस्त आधुनिक काल के खड़ी बोली पद्य-साहित्य की मुख्य २ प्रवृत्तियों का वर्णन करो।

उत्तर प्राचीन काव्य से आधुनिक काल के खड़ी बोली काव्य मे निम्न विशेषताएं उत्पन्न होती हैं:

१. ब्रज भाषा काव्य-भाषा नहीं रहती, उसके स्थान मे खड़ी बोली में पद्य रचना होने लगती है।

२. काव्य-पद्धति मे अन्तर आता है। अलकार रीति आदि काव्य के कला पक्ष का उतना आदर नहीं रहता। कविता मे सादगी आती है। कवि में प्रसिद्ध उपमाओं, रूपकों आदि के प्रति विरक्ति होती है। नवीन नवीन उपमा रूपक आदि और वर्णन के प्रकार चल पड़ते है।

३. छन्दोबन्धन इतने कठिन नहीं रहते, कवि को बहुत स्वतन्त्रता मिल जाती है। छन्दो में मात्रिक और वर्णिक छन्दो के अनेक अप्रचलित रूपो का भी चलन होता है। प्रथम वर्णवृत लिखे जाते हैं, पर पश्चात् मात्रा छन्दों का प्रचार हो जाता है। बिना छन्द के मुक्तक छन्द भी लिखे जाते हैं।

४. काव्य मे, वर्णनात्मक और भावात्मक शैलियो का विकास होता है। प्रबन्ध काव्य, महा काव्य, मुक्तक काव्य लिखे जाते हैं। अंग्रेजी के ढङ्ग पर गीत या लीरिक लिखने की भी परिपाटी चलती है।

५. काव्य के प्राचीन विषय ही न रह कर शृंगार और भक्ति के साथ अन्य समस्त रसों का वर्णन होता है। देश प्रेम, स्वदेशी सभ्यता संस्कृति राज नीति आदि के असंख्य विषय कविता में आ जाते हैं।

६. प्राचीनता के प्रति विद्रोह की भावना और नवीनता के प्रति उत्साह की भावना सर्वत्र मिलती है।

७. व्यक्ति का मूल्य बढ़ता है और साधारण जनके मानसिक उत्थान पतन का, द्वन्द्व का, संघर्ष और प्रेम का चित्र उतारना अधिक रुचता है।

८. कवि कल्पना-लोक से उतर कर इस दुनिया की बात करता है और यथार्थवादी बनता है।

९. कविता मे शैलियों के विकास में रहस्यवाद छाया-वाद आदि अनेक वादों का भी जन्म होता है।

१०. गाधी जी और कवीन्द्र रवीन्द्र का विशेष प्रभाव पड़ता है, फल स्वरूप ग्रामोणता और अछूत पीड़ित के प्रति करुणा और छाया वादी आदि सौन्दर्य प्रधान शैलियों का भी चलन होता है।

११. व्रज भाषा की तुकान्त प्रणाली का परित्याग करके, संस्कृत के ढग पर अतुकान्त पद्य-रचना का चलन होता है।

१२. प्रकृति वर्णन में विशेषता आती है, प्रकृति को कवि जड़ मूक नहीं समझता। प्रत्युत, अब वह उसके स्थूल सौन्दर्य मे निहित आन्तरिक चैतन्य शक्ति का भी दर्शन करके विमुग्ध होता है। प्रकृति उसके लिये अब स्वतंत्र विषय बन जाती है।

१३. संस्कृत, बंगला, मराठी, गुजराती, फ्रेंच, अंग्रेजी आदि भाषाओं के काव्यों का अनुवाद भी होता है और मौलिक रचना भी होती है।

१४. काव्य कला की संस्कृत अंग्रेजी आदि प्रमुख भाषाओं के साहित्य के आधार पर नवीन आधुनिक वैज्ञानिक ढंग से व्याख्या आलोचना विवेचन आदि होते हैं।

आदि आदि इस पद्य साहित्य की मुख्य विशेषताएं है।

प्रश्न—हिन्दी के आधुनिक पद्य साहित्य में या काव्य साहित्य मे नवोद्गत, रहस्यवाद, छायावाद आदि वादों का संक्षेप में परिचय दो।

उत्तर इन वादों के विकास में गांधी जी और रवीन्द्र जैसे महापुरुषों का विशेष प्रभाव पड़ा है। गांधीजी कर्मठ वस्तुवादी या यथार्थवादी होते हुए भी एक गहरे रहस्यवादी थे। यह उनकी गीता की आध्यात्मपरक व्याख्या से स्पष्ट हो जाता है। उनका समस्त विशाल कार्यकलाप एक रहस्यमय आन्तरिक प्रेरणा के इंगित पर होता था। इसे वे स्वीकार भी करते थे। और कवीन्द्र ने तो अंग्रेज़ी कविता से प्रभावित हो उसी शैलीको भारतीय रूप मे रंग कर छायावाद और रहस्यवाद की कविता लिखी थी। नोबल पुरस्कार मिलने के पश्चात् तो उनकी शैली का खूब ही ग्रहण हुआ। फलतः इन दोनो ही महान् व्यक्तियों के प्रभाव मे सर्वप्रथम हिन्दी मे भी रहस्यवाद और छायावाद का जन्म होता है।

छायावाद-रहस्यवाद —इन दोनो वादो मे विशेष अन्तर नही, एक ही शैली के थोड़े भिन्न दो रूप समझिये, जिनमे वर्ण्य विषय के आधार पर अन्तर पड़ गया है। छाया और रहस्यवाद का विकास अंग्रेज़ी के मिस्टिसिज्म से कहा जाता है। पुराने जमाने में जब अंग्रेज़ नाविक समुद्र के मध्य में धुन्ध से घिर जाते थे, तो उन्हें चारों ओर धुन्ध के सिवा और कुछ नहीं दीखता

था। उसमें उन्हें तरह २ की शक्लें दिखाई देती थीं, जिनका वर्णन वे अपनी यात्राओं के वर्णन में किया करते थे। उन्हीं के अनुकरण पर अंग्रेज़ी साहित्य में भी यह प्रणाली चल पड़ी, कि जो वस्तु जहां नहीं है वहां उसकी कल्पना कर उसकी अनुभूति की जाय। इसी को प्रतीकवाद भी कहते हैं। जिस वस्तु की सत्ता नहींहै, या है तो केवल कवि के हृदय मे, उसका अपनी कवि कल्पना और कौशल से प्रतीक (मूर्ति) खड़ा कर तज्जन्य अनुभूति का आनन्द लेना ही इसका प्रकार है। जो वस्तु जहां नहीं है, या है तो अदृश्य रूप में है, उसी को अपने कवित्व के आलोक मे धुंधला सा प्रत्यक्ष दर्शन कर भाव प्रवणताका आनन्द लेनादेना कवि का ध्येय होता है। उसकाकवि किन, कौन, कहा, कैसे आदि प्रश्न सूचक शब्दो से संकेत करता है और उसके रूप और गुण का वर्णन करता है। छायावाद की यही प्रणाली है। किन्तु रहस्यवाद में थोड़ा अन्तर हो जाता है। उसमे पृष्ठ भूमि का आधार आध्यात्मिक हो जाता है। रहस्यवाद का क्षेत्र छायावाद से कही अधिक विस्तृत है, छाया-वाद की परिधि केवल व्यक्ति तक सीमित है और रहस्यवाद परमात्मा से सम्बन्ध रखता है। अभिप्राय स्पष्टतया यह है कि रहस्यवाद में सृष्टि के सबसे बड़े रहस्य (चैतन्य शक्ति) का वाद (वर्णन) होता है। वह सूक्ष्म रूप से समस्त सृष्टि मे व्याप्त है, उसकी सत्ता का अपनी कल्पना से चित्र उपस्थित कर उसकी अनुभूति करना रहस्यवाद है। रहस्यवाद में कवि जगत् मे परमात्मतत्व की प्रत्यक्षवत् अनुभूति करता है, अपनी कल्पना से उसकी छाया (साक्षात् चित्रण तो मनुष्य के लिए संभव नहीं, अतएव छाया ही देख सकता है कवि)का दर्शन करता है और विभोर होता है,इस रहस्यो-द्घाटन पर। उस आनन्द का बहुत थोड़ा सा आभास ही वह अटपटी सी (कबीर जैसी) भाषा में दे सकता है, पूरा नही। छायावाद में कवि अपनी आत्मा की ही छाया देखता है। अपने हृदय की इच्छाओं का, वासनाओं का, सौन्दर्य पिपासा का ही मूर्त रूप कल्पित कर, उसका रेखा चित्र बनाता है और उसकी अनुभूति का आनन्द लेता है। वहां उसके अपने ही हृदय की भावनाएं मूर्त रूप में उपस्थित हो जाती हैं। वह उसका, कैसे, कौन आदि प्रश्न सूचक शब्दों से संकेत देता है। इन दोनो ही वादों मे यह सीमा

ही भेद है। छायावाद मे कवि अपनी आत्मा के ही प्रतीक या छाया की अनुभूति करता है और रहस्यवाद मे कवि जगत् में अनन्त परमात्मतत्व की छाया या प्रतीक देखता है। छाया या प्रतीक का दोनों दर्शन करते हैं, अनुभूति का प्रकार भी समान है दोनों में, अन्तर केवल विषय (आत्मा और परमात्मा) के अनुसार पड़ता है। छायावादी सान्त (अपनी आत्मा) की अनुभूति करता है, दूसरा अनन्त की।

इन दोनो ही रूपो में भगवान् की उपासना भारत मे अत्यन्त प्राचीन काल से चली आती है। ज्ञानोपासना में एक ही ब्रह्म की सर्वत्र चर अचर जगत् में अनुभूति की जाती है और भक्ति मार्ग मे अनन्त की राम कृष्ण रूप में सान्त कल्पना कर (अपनी आत्मा की दशा के अनुकूल) उसकी अनुभूति की जाती है। अतएव भक्ति मार्ग को प्रतीकोपासना भी कहा जाता है। उपनिषदो मे ऐसे वर्णन बहुत मिलेंगे, जिन्हे हम निस्संकोच रहस्यवाद और छायावाद की परिधि मे ला सकते हैं। अतएव यह कहना कि इन वादो का परिचय अंग्रेज़ो से ही मिला, गलत है, हां आधुनिक युग में चलन इनका अंग्रेज़ो के अनुकरण पर हुआ और इनकी शैली आदि की भी आधुनिक रूप से कल्पना अंग्रेज़ो कविता के प्रभाव में हुई। परन्तु इस प्रकार की वर्णन पद्धति भारतीय साहित्य में प्रारम्भ से चलती आई है। कबीर और जायसी के साहित्यो मे बहुत छायावाद और रहस्यवाद मिलता है। प्रसाद जी पर तो निर्विवाद रूप से कबीर और उपनिषदों के रहस्य भाव का प्रभाव पड़ा था। इस प्रकार, ये दोनों शैलियां आधुनिक रूप में अंग्रेज़ो से प्राप्त होने पर भी, रूप-भेद से भारत के साहित्य मे प्रथमतः विद्यमान् थीं।

वस्तुवाद या यथार्थवाद वस्तु स्थिति के वर्णन से होता है। कवि कल्पना की उड़ानें भरकर स्वप्नलोक में विचरण नहीं करता ,अपितु इसी दुनियां की बात करता है। दुनियां के केवल आनन्द ही का वर्णन नही करता, अपितु उसके दुःख आपत्तियों का भी वह वर्णन करता है, जो जीवन में अधिक हैं। यह वस्तु स्थिति के वर्णन करने की शैली को यथार्थ-वाद कहते हैं। इसमें कवि का आधार निरी कल्पना न होकर जीवन के कठोर सत्य होता है।

हालावाद वालावाद शब्दों का प्रयोग ऐसी कविताओंके लिए हुआ था, जिनमें उमर ख्य्याम के ढंग पर सुरा सुन्दरी का मनोमोहक वर्णन था। हाला-वाद के लिए बच्चन की मधुशाला ले सकते है, जिसमें कवि ने अपनी आलौकिक आनन्द की मस्ती को शराब के रूप में वर्णन किया है। किन्तु शराब और साकी का वह वर्णन इतना सुन्दर और इतना लौकिक हो गया है कि उसमें से आध्यात्मिकता उड़कर उसमें कोरे हालावाद की दुर्गन्ध रह जाती है। इसी लिए इस वाद का विशेष आदर नहीं हुआ। वालावाद मे भी इसी ढंग पर स्त्री के शरीर सौन्दर्य का उत्तेजक वर्णन होता है जो कि रीतिकाल के नख-शिख वर्णन का ही आधुनिक रूप है।

प्रकृति-वाद एक महत्व पूर्ण वाद है। आधुनिक काल से पहिले के कालों में प्रकृति का रसों के उद्दीपन विभाव के रूप में जड वर्णन होता था। उसे एक स्वतन्त्र सत्ता मान कर अपनी भावना का साकार साक्षात् आलम्बन बना कर वर्णन करने की परिपाटी उसमें नहीं थी। यह परिपाटी संस्कृत में थी। कालिदास, भव भूति, बाण आदि संस्कृत के महा कवियों ने प्रकृति की सजीव मूर्ति का वर्णन करके, ऐसा ही सजीव वर्णन किया था, जिसे पढ़कर सचमुच प्रकृति की सजीवता का अनुभव होता है। हिन्दी में रीतिकाल में आकर तो प्रकृति वर्णन केवल लगी बंधी परि पाटी पर रह गया था, जिसमें उपमा रूपक आदि इने गिने थे। उन्हीं का सभी प्रयोग कर लेते थे, अपने २ ढग में। प्रकृति का सजीव अनुभव और वर्णन, अंग्रेजो के ढंग पर आधुनिक काव्य में ही होता है। अंग्रेजी के वर्ड सवर्थ, शैले आदि कवियों के प्रकृति दर्शन (Nature philosophy) के आधार पर हिन्दी में भी प्रकृति-वर्णन करने की परिपाटी चलती है। इसमें प्रकृति को सजीव मान कर ही उसके विविध रूपों और भङ्गियों का वर्णन होता है, प्रकृति का कवि ऐसा अनुभव करता है जैसे वह मनुष्य के समान राग द्वेष से युक्त सजीव हो, इसी प्रकृति को स्वतंत्र विषय मान कर उसके वर्णन करने को प्रकृति को प्रकृति वाद कहा जाता है।

प्रगतिवाद इन सब वादों के पश्चात का वाद है। इस वाद मे कवि संसार के वर्तमान असमञ्जसन विधान से सर्वथा असन्तुष्ट हो, इसका ध्वंस करने

के लिए प्रगति (मार्च) का बिगुल फूंकता है। वह वर्तमान संसार व्यवस्था, जिसमें ऊँच नीच का भेद मिटकर समानता नहीं आ सकती, में कोई परिवर्तन संभव नहीं समझता। अतएव उसका ध्वंस ही इलाज समझता है। पश्चात भविष्य के सुख संसार का निर्माण करना चाहता है, जिसमें निर्धन मजदूरों की आवाज प्रबल होगी और कोई ऊँचा नही होगा, सब समान सुखी या दुःखी होंगे। स्पष्ट ही साहित्य में यह धारा राजनीति में समाजवादी विचारों के फलस्वरूप चली। इसमें जहां उग्रता या क्रांति की मात्रा अधिक है वहां और भी अधिक वाम पक्षीय (Liftist) कम्यूनिस्टों का प्रभाव मानिये। वहां कवि संसार में आग लगाकर साम्यवाद के आधार पर नव निर्माण करने के सिवाय और कोई मार्ग नही देखता। वह उसी में विश्व का मंगल देखता है।

इन्हीं के साथ एक और वाद भी चलता है जिसे करुणावाद कह सकते है। महादेवी वर्मा का साहित्य इसका अच्छा उदाहरण है। इस वाद मे कवि को सबसे अधिक करुण रस मे ही आनन्द आता है। वह संसार में सर्वत्र करुणा ही करुणा देखता है और उसी की अनुभूति मे उसको आनन्द मिलता है। संस्कृत में ऐसे कवि भवभूति थे, जो करुणा को हीरस मानते थे। उनका मत था करुण ही एक रस श्रृंगार आदि विभिन्न रसो का रूप ग्रहण करता है, जैसे एक ही जल विभिन्न रूपों के गढ़ो मे विभिन्न रूपो का ग्रहण कर लेता है। हिन्दी में यह वाद भो यद्यपि अंग्रेजी के अनुकरण पर ही आया है पर यह विचार-धारा है बहुत पुरानी। बौद्ध सिद्धान्त भी संसार में दुःख हो अधिक मानता है,सुखको दुख का अभाव माना जाता है। वेदान्त मे भी दु:ख वाद को ऐसोही विचार धारा है। हिन्दी काव्यमें भी ऐसी धारा चली, जिसमें कवियों ने करुण को प्रधानतया संसार में देखा और उसका वर्णन किया। यही शोकवाद, अश्रुवाद या करुणावाद है।

खड़ी बोली के कवि

प्रश्न खड़ी बोली के विशेष प्रसिद्ध कवियों का संक्षेप मे सरल परिचय दो।

उपर खड़ी बोली में साहित्य के अन्य अंगों के साथ पद्यों की भी भारी बाढ़ आई थी। ढेरों पत्र पत्रिकाओं में ढेरों ही कविताएं रहने लगी थीं। अब भी रहती हैं। अनेक गण्य मान्य कवि, कवि शेखर और महाकवि प्रकाश में आये। उनमें कुछ बहुत विशेष हैं, ऐसे जिन्होंने कविता के प्रवाह का रुख फेर दिया अर्थात जिनका आदर्श आगे अनेक कवियों ने अपनाया। ऐसे विशेष कवियों का ही संक्षेप में परिचय नीचे दिया जाता है (सब का संभव नहीं है। इच्छुक को अन्यत्र देख लेना चाहिए)।

श्रीधर पाठक ये संवत् १९२१ में जन्मे थे। इन्होंने सर्वप्रथम खड़ी बोली में काव्य ग्रन्थ लिखे थे। इन्होंने अंग्रेजी के प्रसिद्ध लेखक गोल्डस्मिथ के ग्रन्थों के आधार पर ऊजड़ गांव, एकान्तवासी योगी श्रान्त पथिक थे। इन्होंने लावनी छन्दों का प्रयोग किया था। अनेक फुटकल मौलिक रचनाएं भी की थीं। इन्हें इसीलिए खड़ी बोली का आदि कवि माना जाता है। इनकी भाषा अधिक परिमार्जित नहीं थी, पर वह कमी इनके ऊँचे कवित्व से पूरी हो जाती है। इन पर मराठी साहित्य का काफी प्रभाव पड़ा था।

उदाहरण आज रात परदेशी चल कीजे विश्राम यहीं।
जो कुछ वस्तु कुटी में मेरे करो ग्रहण संकोच नहीं। आदि।

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी द्विवेदी जी का वर्णन गद्य के प्रश्न में हो चुका है। इनका पद्य-साहित्य पर भी विशेष प्रभाव पड़ा। सरस्वती में छपने को भी कविताएं जाती थी, उनका उचित सम्पादन, सुधार परिष्कार आदि करके ये छापते थे। फल यह होता था, अनेक कवि बन जाते थे और जो पहिले कवि बन चुके थे, उन्हें और भी अच्छा लिखना आ जाता था। इस प्रकार गद्य के परिमार्जन के साथ २ इन्होंने पद्य-रचना का भी व्यवस्थापन या परिष्कार का सफल प्रयत्न किया। पहिले ये ब्रज भाषा को अधिक पसन्द करते थे, पर बाद में खड़ी बोली के हामी हो गये थे, यद्यपि ब्रज भाषा प्रेम भी बना रहा। इन्होंने दोनों भाषाओं में कविताएं कीं और संस्कृत-वृत्तों (वर्ण छन्दों) में लिखने की एक नई परिपाटी चलाई, जिसका फिर खूब अनुकरण हुआ। इनको संस्कृत वृत्त लिखने की प्रेरणा मराठी साहित्य के

परिशीलन से मिली थी, जिसके ये पण्डित थे और जिसमें संस्कृत वृत्त प्रणाली का अधिक उपयोग हुआ है। द्विवेदी जी आचार्य पहिले थे। कवि पीछे। अतएव इनकी कविताओं में भाषा-परिष्कार और काव्य-चातुर्य अधिक है और कवित्व अपेक्षाकृत कम है। इनकी कविताएं काव्य-मंजूषा और सुमन नामक दो संग्रह ग्रन्थों में संग्रहीत मिलती हैं। एक उदाहरण

मूल्यवान मंजुल शैया पर पहिले निशा बिताता था।
सुयश और मंगल गीतों से प्रात जगाया जाता था। आदि।

मैथिली शरण गुप्त--इनका कविता काल १९६२ मे सरस्वती मे प्रकाशन से प्रारम्भ होता है। द्विवेदी जी की प्रेरणा और उत्साह से इनकी अधिक से अधिक और सुन्दर से सुन्दर रचनाएं निकलने लगीं। इन्होने कई खण्ड काव्य, छोटे प्रबन्ध काव्य और महाकाव्य लिखे हैं। इनकी प्रसिद्धि का कारण इनका भारत भारती नामक काव्य हुआ था, जिसमें भारत की या हिन्दुओं की भूत और वर्तमान अवस्था का करुणोद्वेजक अन्तर दिखाया गया है। इसी के आधार पर इन्हे राष्ट्रीय कवि की भी उपाधि मिली है। इन पर गांधी जी का विशेष प्रभाव पड़ा था और ये चर्खे के अनन्य भक्त हैं। इन्होंने रंग में भंग, जयद्रथ वध, विकट भेंट, पलासी का युद्ध, गुरुकुल, किसान, पंचवटी, यशोधरा आदि काव्य और खण्डकाव्य लिखे हैं। इनके अतिरिक्त साकेत नामक महाकाव्य भी लिखा है, जिसमें राम कथानक का चित्रण है। रामचरितमानस से विशेषता यह है कि इन्होंने लक्ष्मण की पत्नी उर्मिला और भरत की पत्नी का विशेष विस्तृत और सजीव वर्णन किया है। राम चरित्र लिखने वाले अन्य सब लेखकों ने इनकी ओर विशेष ध्यान नही दिया था। इनके अतिरिक्त इन्होंने अनघ, तिलोत्तमा, चन्द्रहास नामक तीन रूपक काव्य और कुछ रहस्यवाद के पद्य भी लिखे हैं। आजकल ये चिरगांव झांसी में शान्ति से अपनी साधना में निरत हैं। उदाहरण

अबला जीवन हाय! तुम्हारी यही कहानी।
आंचल में है दूध और आंखों में पानी॥

नाथूराम शंकर ये ब्रज भाषा और खड़ी बोली दोनों में लिखते थे।

अधिक तर कवित्त का प्रयोग करते थे। इनकी कविता बड़ी जोरदार और चुभती हुई होती थी। कारण, ये आर्य समाज के सुधारक थे। इन्होने सभी रसों में आलंकारिक वर्णन किया है। उदाहरण

आंख से न आंख लड़ जाय इसी कारण से,
भिन्नता की भीत करतार ने लगाई है॥ आदि।

पं० राम चरित उपाध्याय इनका जन्म संवत् १९२१ में गाजीपुर मे हुआ था। ये पहिले पुरानी पद्धति पर ब्रज भाषा में लिखते थे, पर सरस्वती का प्रकाशन प्रारम्भ होने पर उसमें प्रकाशित नवीन पद्धति पर खड़ी बोली में लिखने लगे। इन्होंने अधिकतर फुटकल भाषणात्मक कविताएं ही लिखी हैं, जो अत्यन्त भाव ज्ञान और देश प्रेम पूर्ण हैं। एक राम के चरित्र के विविध प्रसंगों का वर्णन लिये राम चरित-चिन्तामणि नामक प्रबन्ध काव्य भी लिखा है। उदाहरण

कुशल से रहना यदि है तुम्हे दनुज ! तो फिर गर्व न कीजिये।
शरण में गिरिये रघुनाथ के निबल के बल केवल राम हैं॥ आदि।

पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध ये १९२२ में जन्मे थे और आजमगढ़ जिला के निवासी थे। काशी विश्वविद्यालय में प्रोफेसर थे, जहां से वृद्ध अवस्था में रिटायर होकर अपने गांव में रहने लगे थे, जहां इनकी हाल में ही लीला समाप्त हो गई। ये महाकवि थे। प्रारम्भ में रीति काल की पद्धति पर ब्रज भाषा में उच्चकोटि की कविता लिखते थे। रसादि का वर्णन लिये इन्होंने रसकलस नामक ग्रन्थ लिखा है, जिसमें समस्त रसों पर रसमय कविताएं हैं। पश्चात् खड़ी बोली में लिखने लगे, तो उसमें संस्कृत वृत्तों में प्रिय प्रवास प्रबन्ध काव्य लिखा और फुटकल काव्यों का तो अन्त नही रहा। आप अन्तिम अवस्था तक कविता करते रहे। हिन्दी का कोई ही ऐसा पत्र होगा, जो इनकी कविता को सम्मान से गौरव से न छापता हो। ये भी इतने सहृदय और निरभिमान थे कि किसी को इन्कार करना जानते ही नही थे। अन्तिम दिनों में इन्होंने एक उषा-अनिरुद्ध नामक गद्य मे पौराणिक उपन्यास भी लिखना प्रारम्भ किया था, जो सम्भवतः वे पूर्ण नही कर सके।

ये जितने कवि थे, उतने ही भाषा और काव्य के मर्मज्ञ आचार्य भी थे। इन्होंने एक बोलचाल नामक ग्रन्थ भी लिखा था, जिसमें खड़ी बोली में प्रचलित समस्त मुहावरों और लोकोक्तियों का इन्होंने खडी बोली पद्यों में प्रयोग किया है। उदाहरण

दिवस का अवसान समीप था गगन था कुछ लोहित हो चला।
तरु-शिखा पर थी अब राजती कमलिनी-कुल-वल्लभ की प्रभा॥

सियाराम शरण गुप्त जन्म १९५२ वि०। ये श्री मैथिलीशरण जी के छोटे भाई हैं। स्पष्ट ही इनको अपने बडे भाई और आचार्य द्विवेदी जी से पर्याप्त प्रोत्साहन नेतृत्व मिला। इन्होंने अत्यन्त सुन्दर फुटकल कविताएं लिखी हैं, जिनका संग्रह आर्द्रा, दूर्बादल और विषाद नामक संग्रहों में हुआ है। इनके अतिरिक्त अनाथ, मौर्य विजय नामक छोटे काव्य भी लिखे हैं। उदाहरण

वैरी हुआ विश्व भर मेरा, हाय कहां अब जाऊं मैं ? आदि।

पं० माखनलाल चतुर्वेदी ये १९४७ वि० मे जन्मे थे, और अभी कलकत्ता के विशाल भारत मासिक का सम्पादन कर रहे हैं। ये सक्रिय राष्ट्रवादी है। भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन में इन्होंने पूरा भाग लिया था। माधवराव सप्रे के सहयोग में एक कर्मवीर नामक पत्र भी निकाला था। बलिदान, उन्मूलित वृक्ष, सिपाही आदि अनेक इनकी उच्चकोटि की राष्ट्रीय रचनाएं हैं। ये कवि होने के साथ सफल सम्पादक भी हैं। उदाहरण

अजब रूप धर कर आये हो, छवि कह दूं या नाम कहूँ।
रमण कहूँ या रमणी कह दूं, रमा कहूँ या राम कहूँ॥

रामनरेश त्रिपाठी इन्होंने राष्ट्रीय कविताएं अधिक लिखी हैं। इनके अतिरिक्त मिलन, पथिक, स्वप्न नामक खण्ड काव्य भी लिखे हैं। इनकी कविता सरस और सरल है। उदाहरण

मैं ढूंढता तुझे था जब कुंज और वन में।
तू खोजता मुझे था तब दीन के वतन में॥ आदि।

ला० भगवानदीन दीन ये काशी विश्व विद्यालय के प्रोफेसर और १९२३–१९८७ में थे। नागरी प्रचारिणी सभा के सहयोगी कार्यकर्त्ता थे। अनेक प्राचीन कवियों पर टीकाएं और आलोचनाएं लिखने के अतिरिक्त व्रज भाषा और खड़ी बोली मे कविताएं भी की है। इनकी कविताएं वीर रस की और प्रबन्ध (कथा) रूप में हैं। नाम, वीर क्षत्राणी, वीर बालक, वीर माता, वीर पत्नी और वीर प्रताप, ये हैं। उदाहरण—

यह दुर्दशा देश की लख के नीला मन में हुई अधीर।

क्रोध सहित पति को ललकारा नाहक बनता है तू वीर ॥ आदि।

पं० रूपनारायण पाण्डेय—ये अधिकतर बंगला से हिन्दी में अनुवाद करने के लिए प्रसिद्ध हैं, पुराने कुशल गद्य लेखक हैं। सरल खड़ी बोली में मुक्तक कविताएं लिखी हैं, जिनके विषय प्राय: देश भक्ति, अछूतोद्धार, स्वदेशी आदि राष्ट्रीय रहते हैं। उदाहरण

बाधाएं हों लाख, मगर हम नहीं हटेंगे,
उमँग और उत्साह हमारे नहीं घटेंगे। आदि।

प० लोचन प्रसाद पाण्डेय इनकी कविताएं सरस्वती मे १९६२ में निकलने लगी थीं। ये बालपन से ही कविता करने लगे थे। पश्चात्, द्विवेदी जी के प्रभाव मे आकर इन्हें और भी प्रोत्साहन मिला और इन्होंने फुटकल प्रसंगों का और कथाओं का सर्व साधारण बोल चाल की खड़ी बोली के पद्यों में वर्णन किया। भाव पूर्ण कविताएं भी लिखीं। इनकी ऐसी ही रचना मृगी दुख मोचन है। इसमें सवैयों में एक मृगी के कष्ट पूर्ण जीवन का वर्णन है। ये प्राय: ऐतिहासिक कथानकों से अपना वर्ण्य विषय ढूढते थे। राष्ट्रीय विचार तो न्यूनाधिक रूप में इस काल के प्राय सभी कवियों में वर्तमान हैं। उदाहरण

चढ़ जाते पहाड़ों में कभी, कभी झाड़ों के नीचे फिरें विचरें।
कभी कोमल पत्तियां खाया करें, कभी मीठी हरी २ घास चरें। आदि।

प्रश्न -संक्षेप मे छायावादी कवियों और उनके साहित्य का परिचय दो।

उत्तर द्विवेदी जी के काल में, खड़ी बोली पद्य में रचना तो बहुत होने लगी थी, पर उसमे इति-वृत्तात्मकता (वर्णन शैलि) अधिक थी। कवि भाषा को शुद्ध परिमार्जित ढग में छन्द मे बिठा कर अपने को कृत कृत्य समझने लगा था, भाव पक्ष कमजोर और थोड़ा आता था, अधिक चिन्ता कवि को भाषा की रहती थी। फल स्वरूप लोग खड़ी बोली की अधिकांश कविताओं को कोरी तुक-बन्दी मात्र मानने लगे थे। काव्य के विकास का इस प्रकार अवरोध सा हो जाने पर, प्राचीन प्रचलित काव्य-पद्धति से असन्तुष्ट होकर उसकी प्रतिक्रिया-स्वरूप बंगला और अंग्रेजी के अनुकरण पर काव्य में नवीन कई शैलियों का विकास होता है, जो छाया वाद आदि नामो सेप्रसिद्ध हुई। इस पद्धति के कवियो में सर्व प्रथम बा० जय शकर प्रसाद जी का नाम आता है।

बा० जय शंकर प्रसाद छाया और रहस्य वाद के ये सर्वप्रथम कवि माने जाते हैं, जिनका आदर्श आगे के नवीन कवियो ने ग्रहण किया। इनका काल १९२४ १९६९ है। ये काशी मे रहते थे। बचपन मे ही पिता की मृत्यु हो जाने पर और घर का भार पड़ जाने के बाद भी आपने संस्कृत प्राकृत, फारसी अंग्रेजी का पर्याप्त ज्ञान प्राप्त किया था। ये प्रारंभ से भावुक और कवि थे। प्राचीन भारतीय साहित्य देखने और अनेक आपत्तियों को भोगने से इनकी आध्यात्मिक पिपासा जागृत हो गई थी। अतएव इनकी रचनाओं मे भी आध्यात्मिक रहस्य वाद की मात्रा ही अधिक मिलती है। इन्होंने सर्व प्रथम खडी बोली मे संस्कृत के ढंग पर अतुकान्त कविता लिखी थी। इनकी रचनाएं कानन कुसुम, प्रेम पथिक, सम्राट चन्द्र गुप्त मौर्य (नाटक) अजात शत्रु, स्कन्द गुप्त, (नाटक) तितली (उपन्यास) राज्य श्री आदि अनेक हैं। ये एक उत्तम कोटि के भावुक कवि होने के साथ साथ अच्छे नाटक कार और उपन्यास लेखक भी थे। उदाहरण:

भरा नैनों में मन में रूप, किसी छलिया का अमल अनूप। आदि।

सूर्य कान्त त्रिपाठी निराला जन्म सवत् १९५३। स्थान उन्नाव जिला। इन्होंने भी छाया रहस्यवाद में लिखा है। अंग्रेजी के ढग के गद्य गीत

(Blankverse) लिखने का प्रारंभ इन्होंने ही किया था और इसमें सफलता प्राप्त की थी। ये कई पत्रों के सम्पादक भी रहे। इनकी कविताओं के तीन संग्रह परिमल, गीतिका और तुलसी दास हैं। इनके अतिरिक्त इन्होंने उपन्यास भी लिखे हैं। आप अत्यन्त भावुक, रसमय, भाषा के पारखी कुशल कवि हैं। उदाहरण:

वह इष्ट देव के मन्दिर की पूजा सी,
वह दीप शिखासी शान्त भाव में लीन। आदि।

श्री सुमित्रा नन्दन पन्त जन्म अलमोडा में संवत् १९५८ में। कोमल कल्पना आदि और मधुर भावों के संगीतज्ञ कवि। छाया वाद, रहस्य वाद के परमोत्कृष्ट कवि। प्रकृति वर्णन के कुशल कलाकार। इनका प्रकृति-वर्णन अत्यन्त स्वाभाविक और आधुनिक नवीन शैली का है। इन्होंने प्रकृति की आन्तरिक मधुर सत्ता की अनुभूति करके उसका चित्र खींचा है। इनका प्रकृति-वर्णन अति सूक्ष्म और गहन है। उदाहरण.

सुख दुख के मधुर मिलन से यह जीवन हो परि पूरन।
फिर धन में ओझल हो शशि फिर शशि से ओझल हो धन॥

महादेवी वर्मा जन्म फरुखाबाद में १९६४ में हुआ। उच्च शिक्षा प्राप्त करके चान्द की सम्पादिका और महिला विश्व विद्यालय प्रयाग की आचार्य बनीं। पश्चात् खड़ी बोली में कविता करने लगी। ये छाया वाद की उत्कृष्ट कवियित्री हैं। इनकी कविताओं में करुणा फूटी पड़ती है। करुण इनका विशेष प्रिय रस है, अत. संसार में ये सर्वत्र करुणा ही देखती है। श्रृंगार और सौन्दर्य में, हंसी और आनन्द में भी ये करुणा ही निहित देखती हैं। इनकी रचनाएं नीहार, रश्मि, सान्ध्यगीत आदि हैं। एक उदाहरण.

अपने इस सूने पन की मैं हूँ रानी मतवाली,
प्राणों का दीप जला कर करती रहती दीवाली।

राम कुमार वर्मा मध्य प्रदेश सागर जिले में संवत् १९६२ में जन्म हुआ। एम. ए. पी. एच. डी. करके विश्व विद्यालय प्रयाग में प्रोफेसर हुए।

आपने कुछ वर्णनात्मक काव्य रचनाएं लिखीं, वीर हम्मीर, कुल ललना, चितवन और चित्तौड़ की चिता, इनकी ऐसी ही वर्णनात्मक ढग की उत्कृष्ट रचनाएं हैं। इनके अतिरिक्त अंजलि, अभिशाप, चित्ररेखा, चन्द्र किरण निशीथ आदि नवीन शैली की भाव प्रधान रचनाएं लिखीं, जो मुक्तक छाया वादी और प्रकृति वर्णन की कविताएं हैं। प्रकृति वर्णन इनका परम स्वाभाविक और प्रकृति की सजीव अदृश्य छाया लिये है। उदाहरणः

हृदय एक है उसमें कितनी और लगी है आग,
उसे शान्त करने को लोचन अश्रु रहे हैं त्याग। आदि।

सुभद्राकुमारी चौहान ये यद्यपि छाया वादी पद्धति में तो नहीं आतीं, किन्तु इसी काल की वस्तुवादी नवीन धारा की कवियित्री हैं। इनकी कविताओं में यथार्थ का सरस सुन्दर सरल और स्वाभाविक चित्रण हुआ है। इन्होंने अधिकतर राष्ट्रीय, वीर रस की, और वात्सल्य रस की कविताएं लिखी हैं। वीर रस की कविताएं इनकी जितनी ओजस्विनी होती हैं, वात्सल्य और करुण रस की कविताएं इनकी उतनी ही मधुर और सरस होती है। इन्होंने भी वर्णनात्मक और भावात्मक दोनों शैलियों में लिखा है। इनकी वीर रस की झांसी वाली रानी नामक कविता अत्यन्त प्रसिद्ध है। उदाहरणः

धूप नहीं नैवेद्य नहीं, झांकी का श्रृंगार नहीं।
हाय! गले में पहिनाने को फूलों का भी हार नहीं॥